MA-HIS-101(H)

इतिहास लेखन: धारणाएँ, पद्धतियाँ एवं उपकरण

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

SWAMI VIVEKANAND
SUBHARTI UNIVERSITY
Meerut (National Capital Region Delhi)

इतिहास लेखन : धारणाएँ, पद्धतियाँ एवं उपकरण

(Historiography : Concepts, Methods & Themes)

MA HIS-101(H)

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY
MEERUT–250 005
UTTAR PRADESH

SLM module developed by :
Ratna Prakesh

Reviewed by :
Dr. Harish Kumar

Assessed by :
Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2)

Copyright © इतिहास लेखन : धारणाएँ, पद्धतियाँ एवं उपकरण Pragati Prakashan, Meerut

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced o
transmitted or utilized or stored in any form or by any meaning now known or hereinafter invented
electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information
storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Pragati Prakashan, Meerut and has been
obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge
However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damage
arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability o
fitness for any particular use.

Published by : Pragati Prakashan, 240 W.K. Road, Meerut – 250 001
Tel. 2640642, 2643636, 6544643, E-mail : pragatiprakashan@gmail.com

Typeset at : Pragati Laser Type Setters Pvt. Ltd., Meerut Printed at : Arihant Electric Press, Mee

EDITION : 2021

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक 'इतिहास लेखन : धारणाएँ, पद्धतियाँ एवं उपकरण' में विषय पर आधारित बहुत से तथ्यों का अध्ययन करेंगे।

इस विषय पर निम्नलिखित ईकाईयों पर ध्यान केन्द्रित किया है -

- इतिहास की समझ
- इतिहासवाद एवं इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध
- इतिहास एवं पद्धति
- भारतीय इतिहास की विषय-वस्तु

SYLLABUS

MA-HISTORY-I YEAR (I–SEMESTER)

Historiography : Concepts, Methods & Themes (MAHIS101)

Course Objectives:

To enable the student to :

- *Acquire knowledge of Meaning, Definition Nature & scope of History.*
- *Comprehend the Historicism & History 's methodology.*
- *Develop a critical attitude about themes in Indian History.*

Unit-1: Understanding History:

1. Meaning, Definition Nature & scope of History.
2. Value and Subject matter of History
3. Problems of Objectivity subjectivity and bias in History
4. Causation in History

UNIT 2 :

1. Historicism.
2. History and other Disciplines:
   (a) History and other social sciences.
   (b) Auxiliary sciences
   (c) History and applied sciences
   (d) History and Literature
   (e) History and Law.

Unit-3: History and methodology:

(a) Sources of History
(b) Preliminary operations
(c) Analytical operations - External & Internal criticism
(d) Synthestic operations & interpretation
(e) Concluding operations.

Unit-4: Themes in Indian History:

- Economy in Indian History
- Culture in Indian History
- Varna and caste in Indian istory.
- Religion in Indian History.

विषय-सूची

1. **इतिहास की समझ (UNDERSTANDING HISTORY)** 1-

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
वस्तुनिष्ठता का अर्थ (Meaning of Objectivity)
विषयनिष्ठता एवं पूर्वाग्रह (Subjectivity & Bias in History)
इतिहास की प्रकृति (Nature of History)
ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें (Problems of Historical Objectivity)
इतिहास में कार्य-कारण (Causation in History)
छात्र क्रिया-कलाप (Student Activity)
सारांश (Summary)
अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

2. **इतिहासवाद एवं इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध (HISTORICISM AND RELATION OF HISTORY WITH OTHER DISCIPLINES)** 36

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
इतिहासवाद (Historicism)
इतिहासवाद की विशेषतायें (Characteristics of Historicism)
इतिहास एवं अन्य सामाजिक विज्ञान (History and other Social Sciences)
इतिहास एवं सहायक विज्ञान (History and Auxiliary Sciences)
इतिहास एवं अन्य विज्ञान (History and other Sciences)
इतिहास एवं साहित्य (History and Literature)
इतिहास एवं विधि (History and Law)
छात्र क्रिया-कलाप (Student Activity)
सारांश (Summary)
अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

3. **इतिहास एवं पद्धति (HISTORY AND METHODOLOGY)** 5

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
इतिहास के स्रोत (Sources of History)
प्रारम्भिक शोध कार्यविधि (Preliminary Research Operations)
विश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि (Analytical Research Operations)
संश्लेषणात्मक शोध कार्यविधि (Synthetic Research Operations)
उपसंहारात्मक शोध कार्यविधि (Concluding Research Operations)
सारांश (Summary)
संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

4. **भारतीय इतिहास की विषय-वस्तु (THEMES IN INDIAN HISTORY)** 79

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
भारतीय इतिहास में अर्थव्यवस्था (Economy in Indian History)
कृषक व श्रमिक (Peasants and Labour)
भारतीय इतिहास में संस्कृति (Culture in Indian History)
धर्म का अर्थ (Meaning of Religion)
मध्यकाल में धार्मिक आन्दोलन (Religious Movements in Medieval Period)
वर्ण (Varna)
सारांश (Summary)
अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

अध्याय

1

इतिहास की समझ
(UNDERSTANDING HISTORY)

संरचना

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

वस्तुनिष्ठता का अर्थ (Meaning of Objectivity)

- विषयनिष्ठता एवं पूर्वाग्रह (Subjectivity & Bias in History)
- इतिहास की प्रकृति (Nature of History)

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें (Problems of Historical Objectivity)

इतिहास में कार्य-कारण (Causation in History)

- छात्र क्रिया-कलाप (Student Activity)

सारांश (Summary)

अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

● उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे—

- इतिहास का अर्थ समझने में
- इतिहास की प्रकृति को समझने में;
- इतिहास का महत्व समझने में;
- इतिहास का क्षेत्र समझने में;
- इतिहास के प्रकार समझने में;
- इतिहास में वस्तुनिष्ठता एवं पूर्वाग्रहों को समझने में;
- इतिहास में कार्य कारण के सम्बन्ध को समझने में।

● प्रस्तावना (Introduction)

इतिहास का अर्थ एवं परिभाषा—इतिहास यूनानी शब्द 'हिस्टोरिया' (Historia) का पर्याय है, जिसका अर्थ होता है ज्ञान (Knowledge), खोज, छानबीन (Enquiry), शोध (Research) , अनुसंधान (Investigation) एवं वृत्तान्त (Narration) आदि। यह एक व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत प्राग-इतिहास (Pre-history), आद्य-इतिहास (Proto-history) आते हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रत्येक इतिहासकार ने इतिहास की व्याख्या और परिभाषा अपने ढंग से की है। इतिहास के जनक **हेरोडोटस** के शब्दों में, "इतिहास अतीत में मानव के कार्य-कलापों का विज्ञान है।" यूनानी चिन्तक **अरस्तू** के शब्दों में, "इतिहास अपरिवर्तित अतीत का वृत्तान्त है।" उसने एक स्थान पर और लिखा है, "इतिहास अतीत

की राजनीति है और जो राजनीति है वही आज का इतिहास है।'' **एडवर्ड फ्रीमैन** ने भी इतिहास को अतीत व राजनीति बतलाया है। सर **जौन सीले** के शब्दों में, ''इतिहास से उन्मुक्त न होने पर राजनीति अश्लील है त इतिहास का राजनीति से सम्बन्ध न रहने पर वह साहित्य हो जाता है।''कुछ विद्वानों ने इतिहास को साहि कहा है। **मैकाले** के शब्दों में, ''इतिहास उपन्यास से प्रारम्भ होता है और निबन्ध में खत्म होता है।'' इसका ए अच्छा उदाहरण है **गिब्बन** की रचना 'डिक्लाइन एण्ड फॉल ऑफ द रोमन एम्पायर'। परन्तु अब इतिहास स्वंय को साहित्य से उन्मुक्त कर लिया है और यह समाज विज्ञान की जननी बन गया है।

कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को महान व्यक्तियों की आत्म-कथायें कहकर पुकारा है। **कार्लाइल** शब्दों में, ''इतिहास असंख्य आत्मकथाओं का सार है। यह मानव की उपलब्धियों, विशेषकर महान लो विजेताओं, शासकों, कलाकारों या पैगम्बरों का दस्तावेज है।'' इमर्सन ने भी कार्लाइल के विचारों का सम किया है।

कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को धर्म और नैतिकता से जोड़ दिया है। ऐसे इतिहासकारों को आदर्शव कहा गया है। **कॉलरिज** के शब्दों में, ''इतिहास मानव और उसकी मंजिल की आशा एवं पवित्र चिन्तनों से अनुप्राणित करता है।'' **लेबनीज** ने भी कहा है कि ''इतिहास धर्म का सही प्रदर्शन है।''

कुछ इतिहासकारों ने इतिहास का मनोवैज्ञानिक अर्थ दिया है। इटली के दार्शनिक **क्रोचे** के विचार अतीत की घटनायें तब इतिहास बनती हैं जब इतिहासकार उनके बारे में मनन करता है। इतिहासकार के चिन से ही इतिहास लिखा जाता है। **टॉमस बक्ल** के शब्दों में, ''मानव जाति का इतिहास वृत्तियों का इतिहास है प्रवृत्तियाँ मस्तिष्क में आकार ग्रहण करती हैं जिनको इतिहासकार लिपिबद्ध कर देता है।

कुछ इतिहाकारों ने इतिहास की निराशावादी परिभाषा की है। **गिब्बन** के शब्दों में, ''इतिहास मानव मूर्खता, अपराध और दुर्भाग्य का दस्तावेज है।'' **वाल्टेयर** ने भी लिखा है, ''इतिहास अपराधों एवं दुर्भाग्यों भी चित्रण है।'' जर्मन दार्शनिक **हीगेल** ने भी इतिहास की निराशावादी परिभाषा दी है, परन्तु अधिकांश वि इतिहास की इन निराशावादी परिभाषाओं से सहमत नहीं हैं।

इतिहासकारों का एक ऐसा वर्ग है जो यह मानता है कि इतिहास समाज का सर्वांगीण अध्ययन करता **ए०एल० रोज** ने लिखा है, '' इतिहास किसी भी देश की सभ्यता-संस्कृति का दर्पण है।'' **चार्ल्स फर्थ** क है, ''इतिहास समाज, चिन्तन एवं भौतिक दशाओं का दस्तावेज है।''

इतिहासकारों का एक वर्ग केवल मात्र आर्थिक विकास के अध्ययन को इतिहास मानता है। इन विद्वान इतिहास की आर्थिक व्याख्या की है और वे यह मानते हैं कि धन का उत्पादन, उपयोग और वितरण समाज प्रभावित करता है। **थोरोल्ड रोजर** के शब्दों में, ''प्राय: महान राजनीतिक घटनाओं तथा समाजिक आन्दो की पृष्ठभूमि में अर्थिक कारण होते हैं।'' **कार्ल मार्क्स** तो इतिहास की आर्थिक व्याख्या का प्रमुख प्रतिपादक जिसने इसके मूल में वर्ग-संघर्ष बताया है।

इतिहास तथ्यों का वृत्तान्त एवं मूल्यांकन के अतिरिक्त तथ्यों का समान्यीकरण भी है। उदाहरण के फ्रांस की राज्यक्रांति, चीन की क्रांति और रूस की क्रांति का अध्ययन करके हम यह निष्कर्ष निकाल ले कि असंतोष, आर्थिक कष्ट एवं आक्रोश क्रान्ति को जन्म देते हैं। परन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य वस्तुनिष्ठ

वैज्ञानिक होने चाहिये। इसमें इतिहासकार को अपने ढंग से इतिहास की व्याख्या नहीं करनी चाहिये तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त रहना चाहिये। जब इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों को अपने ढंग से प्रस्तुत करने लगता है तो वह विवरण इतिहास न होकर अभिनन्दन ग्रंथ बन जाता है। इन्हें विद्वानों ने 'खराब इतिहास' (Bad History) कहकर पुकारा है। इस प्रकार के इतिहास हर युग में तथा हर देश में लिखे गये हैं। हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति, बाणभट्ट का हर्षचरित, चन्दबरदाई का पृथ्वीराज रासो, अबुल फजल की आइन-ए-अकबरी कुछ इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं। यद्यपि यह सभी ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं परन्तु इनके लेखकों ने अपने आश्रयदाता की इतनी अधिक प्रशंसा कर दी है कि इतिहास के छात्र के लिये उसमें से सच्चाई ढूंढ़ पाना अत्यधिक कठिन हो जाता है। इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न विद्वानों ने इतिहास की अपने -अपने रूपों में व्याख्या की है। इनमें से किसी एक को इतिहास की सबसे सही परिभाषा मान लेना उचित नहीं होगा। फिर इन सब परिभाषाओं के अध्ययन से एक बात निकल कर आती है कि इतिहास अतीत का वर्णन है तथा वर्तमान के लिये प्रेरणा का स्रोत है। चार्ल्स फर्थ के शब्दों में, "इतिहास मानव समाज का लेखा-जोखा है। यह उन परिवर्तनों को बताता है जिनसे समाज गुजरा है। यह उन विचारों को भी बताता है जिन्होने समाज के क्रियाकलापों तथा भौतिक दशाओं को प्राभावित किया है।" **पंडित जवाहर लाल नेहरू** ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में लिखा है, "वर्तमान की समस्याओं का मूल अतीत में है इसलिये मैने अतीत की खोज की और यह समझ पाया कि वर्तमान को समझने के लिये अतीत को समझना आवश्यक है।" अन्त में हम **ई० एच० कार** के शब्दों में कह सकते हैं, "इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक अनन्त संवाद है तथा इतिहासकार का मुख्य काम वर्तमान के संदर्भ में अतीत का अध्ययन है।"

● इतिहास की प्रकृति (Nature of History)

पहले इतिहास को प्राचीन घटनाओं का लेखा-लोखा मात्र माना जाता था परन्तु अब इसका अध्ययन अलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है। एक इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि वह घटनाओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठता के साथ करे। उसका मुख्य दायित्व है अतीत को समझना और उसके आधार पर घटनाओं का मूल्यांकन। उसका मत अतीत में हुई घटनाओं का महत्व समझाता है। एक इतिहासकार से केवल अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की ही अपेक्षा नहीं की जाती वरन् यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह उनको सही तरीके से प्रस्तुत करे। वह तथ्यों को एकत्रित करे, उनका मूल्यांकन करे तथा उनको उचित रूप में अभिव्यक्त करें। उसे इस बात की अनुमति नहीं होती कि वह ऐतिहासिक तथ्यों में अपने व्यक्तिगत विचारों का मिश्रण करे। परन्तु यह सम्भव नहीं हो पाता कि इतिहास लिखते समय एक इतिहासकार पूरी तरह से निष्पक्ष रहे और उसका लेखन उसके व्यक्तिगत विचारों, सोच अथवा मानसिकता से प्रभावित न हो। प्राचीन समय में व्यक्तियों और राष्ट्रों के कार्य-कलापों का क्षेत्र सीमित था,परन्तु अब मुनष्य एवं राष्ट्रों दोनों के ही कार्यकलापों में तेजी से वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप पिछले कुछ समय की प्रकृति में भारी परिवर्तन आया है। पहले इतिहास घटनाओं का एक व्याख्यात्मक विवरण मात्र था, परन्तु अब इतिहास का अध्ययन आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक तरीके से करना आवश्यक हो गया है जिसमें इतिहासकार प्राचीन घटनाओं का कहानियों के तौर पर विवरण मात्र प्रस्तुत नहीं करता परन्तु उसको लिखते समय अपनी बुद्धि और समझ का भी प्रयोग करता है। इतिहासकार का कार्य न तो अतीत के प्रति लगाव है, न ही अतीत की निन्दा और न ही उससे असम्बद्ध रहना, वरन् अतीत को वर्तमान पर उसके प्रभाव के दृष्टिकोण से समझना है। अब आवश्यकता है

चीजों और घटनाओं को एक-दूसरे से जोड़कर देखने की और वस्तुनिष्ठता के साथ उनका मूल्यांकन करने क
। बी० शेखअली ने लिखा है कि ऐतिहासिक कार्य-कलाप में तीन क्रियायें सम्मिलित हैं जो तीनों एक साथ क
जानी चाहिये। पहला है सत्य तक पहुंचना, समस्त मानव अतीत की उसी रूप में जानकारी जिस रूप में घटना
हुई थी और इस बात को सुनिश्चित करना कि सही तथ्य पकड़ में आ गये हैं। दूसरा काम है उपलब्ध तथ्यों क
व्याख्या, उनका मूल्यांकन तथा उनके महत्व को समझाना। तीसरा है विचारों को स्पष्ट और आकर्षक तरीके
प्रस्तुत करना। ये तीन कार्य इतिहासकार को एक वैज्ञानिक (जब वह तथ्यों को एकत्रित करता है), ए
दार्शनिक (जब वह उनकी व्याख्या करता है) तथा एक साहित्यकार (जब वह उनको अभिव्यक्त करता है
बनाते हैं।

इतिहास का सम्बन्ध अतीत की घटनाओं के विश्लेषण और उनके वर्णन से है। इसलिये इतिहाकार
लिये आवश्यक हो जाता है कि वह ऐतिहासिक तथ्यों की प्रकृति को सदैव ध्यान में रक्खे। यह असम्भव है f
इन तथ्यों पर इतिहासकार की सोच, रूझान अथवा विचारधारा एवं व्यक्तित्व का प्रभाव न पड़े। अतीत
घटनाओं के प्रति उसकी सहानुभूति या उदासीनता पर उसकी सोच और समझ का किसी न किसी रूप में प्रभ
तो अवश्य पड़ेगा। वह अतीत की घटनाओं का किन मापदंडो पर मूल्यांकन करता है तो जिस युग में वह
रहा है उसके युग में प्रचलित सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक एवं आर्थक विचारों के अनुरूप ही होगें। उदाहर
के लिये रूसो या वाल्टेयर अपने युग की घटनाओं का वर्णन करते हुए वस्तुनिष्ठ नही रह सकते; उसमें
युग की परिस्थितियाँ तथा उन परिस्थितियों के प्रति उनकी सोच अवश्य झांकती हुई नजर आएगी। इसी प्रव
एक मार्क्सवादी इतिहासकार जब कभी भी मानव के विचार एवं व्यवहार के विकास की कहानी लिखेगा तो
मनुष्य पर उसकी आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव के बिना उसका वर्णन कर ही नहीं सकता। इसलि
इतिहासकार वस्तुनिष्ठ होने का कितना भी प्रयास कर ले वह पूरी तरह वस्तुनिष्ठ हो ही नहीं सकता और उस
वर्णन में पूर्वाग्रह दिखाई पड़ेंगे ही।

बी० शेखअली का विचार है कि उपर्युक्त परिस्थितियों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है
इतिहास को समय-समय पर दोबारा लिखा जाये। नये घटनाक्रम और विचारों के परिप्रेक्ष्य में अतीत
घटनाओं का पुर्नमूल्यांकन किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त दिन-प्रतिदिन ज्ञान की अनेक नई शाखाओं
विकास हो रहा है जिसके कारण अतीत के बारे में नये तथ्य सामने आये हैं। दूसरी बात ज्ञान की इन शाख
के विकास के परिणामस्वरूप अब इतिहासकार को अतीत की खोज के लिये नये माध्यम मिल गये हैं। क
का अर्थ यह है कि विभिन्न युगों में समाज के शैक्षणिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मानदंडो में अन्तर आत
और उन्ही के अनुरूप इतिहासकार के वर्णन में भी अन्तर आना चाहिये। एक विद्वान इतिहासकार ने अपने
की पुष्टि में हेरोडोटस का उदाहरण दिया है कि चूँकि वह महाकाव्य युग से सम्बन्धित था इसलिये उ
इतिहास लेखन में कहानी का तत्व काफी हद तक है। इसके विपरीत बरी आधुनिक युग की देन है, जि
विज्ञान और तकनीक का अत्यधिक विकास हो चुका था। इसलिये वह इतिहास को विज्ञान कहने में बिल
नहीं हिचकता। मध्य युग में व्यक्ति पर धर्म का प्रभाव इतना मजबूत था कि संत आग्स्तीन के विचार में सम
विश्व जैसे भगवान का ही शहर हो। इस आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहँचते हैं कि इतिहास उस युग
प्रतिबिम्ब होता है जिसमें वह लिखा गया है।

मानव समाज निरन्तर गतिशील एवं विकासोन्मुख होता है। इसका उदाहरण है विभिन्न राजनीतिक पद्धतियों का जन्म। प्राचीन काल में विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से राजतन्त्रात्मक शासन का बाहुल्य था जो धीरे-धीरे आधुनिक युग की आवश्कताओं के अनुरूप जनतन्त्रात्मक पद्धति में बदलने लगा।

जब कभी हम इतिहास की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते हैं तो एक महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने उभर कर आता है और वह यह है कि क्या **इतिहास की पुनरावृत्ति** होती है। कुछ विद्वानों का विचार है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है जबकि अन्य विद्वान इस मत का खुलकर विरोध करते हैं। पर वास्तव में इन दोनों ही विचारधाराओं में कुछ-कुछ सत्य का अंश है। इतिहास की पुनरावृत्ति होती है क्योंकि मानव की प्रवृति प्रारम्भ से अब तक वही है और विश्व में होने वाली बातें वहीं है, यद्यपि वे प्रकट भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। मनुष्य के मस्तिष्क को जो ताकतें प्रभावित करती हैं तथा जिनसे घटनाक्रम प्रभावित होता है वे समस्त विश्व में समान हैं। इतना ही नहीं, उनमें एक कारण और कार्य का सम्बन्ध भी है तथा वे एक-दूसरे से स्थायी रूप से जुड़ी हुई भी हैं। यह सही है कि ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम एक नहीं होता और उनके घटने का स्थान भी अलग-अलग होता है, परन्तु यदि हम गौर से देखें तो उनमें हमें एक निश्चित नमूना (Definite Pattern) साफ-साफ नजर आता है। चूँकि इतिहास का सम्बन्ध मानव जाति से है और मनुष्य अपनी प्रकृति के आगे लाचार है, इसलिये उसके कार्य-कलापों में एक निश्चित समानता दिखाई पड़ना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिये लड़ना मनुष्य की प्रकृति में है, इसलिये हर युग में युद्ध होते रहे हैं। परन्तु हर युद्ध के बाद मनुष्य में युद्ध की विभीषिका को देखकर एक पश्चाताप की भावना जन्म लेती है तथा या तो वह भविष्य में दोबारा युद्ध न लड़ने का प्रण लेता है या ऐसा वातावरण निर्मित करने का प्रयास करता है कि भविष्य में युद्ध न हो। उदाहरण के लिये प्राचीन युग में कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने युद्ध परित्याग करने की नीति अपनाई, उसी प्रकार आधुनिक युग में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद युद्ध में अधिक सक्रिय राष्ट्रों ने राष्ट्रसंघ की स्थापना की जिससे विश्व को दोबारा युद्ध की विभीषिका न झेलनी पड़े। इसी प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई जिससे विश्व-व्यापी युद्ध पर रोक लगाई जा सके। इसी प्रकार हम देखते हैं कि कुछ ऐसे मूल्य एवं आदर्श हैं जिनकी महत्ता को बार-बार दोहराया जाता है। उदाहरण के लिये प्रसिद्धी की इच्छा ने हमेशा विध्वंस को जन्म दिया है और इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है कि एक व्यक्ति ने अपनी ख्याति के लालच में अंधे होकर विश्व को भयंकर होकर विनाश का पात्र बनाया। उदाहरण के लिये सिकन्दर, जूलियस सीजर, नेपोलियन या जर्मनी का सम्राट कैजर विलियम द्वितीय या अधिनायक हिटलर, जिन्होने अपनी ख्याति के लिये विश्व में भंयकर विनाश का तांडव किया। परन्तु इतिहास हमें यह भी बताता है कि शक्ति को कभी औचित्यपूर्ण नहीं बताया गया यद्यपि कुछ समय के लिये व्यक्ति शक्ति के बल पर अधिकार हासिल क्यों न कर लें। ऊपर दिये गये सारे नाम इस तथ्य के उदाहरण हैं। इसी प्रकार इतिहास का कोई युग भी क्यों न रहा हो न्याय की हमेशा विजय होती है तथा ईश्वर हमेशा सच्चाई के साथ रहता है। इस प्रकार युग कोई सा भी रहा हो मनुष्य की गतिविधियाँ एवं कार्य-कलाप वही रहे हैं, उनके परिणाम एक से रहे हैं और मनुष्य की प्रवृत्ति सदियों से वैसी की वैसी है। इसी आधार पर कुछ विद्वान इस सिद्धान्त का बार-बार प्रतिपादन करते हैं कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। वे विद्वान जो इतिहास की पुनरावृत्ति को स्वीकार नहीं करते वे इस आधार पर कहते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और दो घटनायें एक सी दिखाई दें तो वे वास्तव में एक सी नहीं हैं। वे कहते हैं कि इतिहास का अर्थ है महत्वपूर्ण घटनाओं एवं मानव गतिविधियों का लेखा-जोखा। उनके अनुसार

इतिहास की हर घटना एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है और दो घटनाओं के बीच में कोई समानता नहीं है। उनका तर्क है कि यदि हम इतिहास की पुनरावृत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार कर लें तो उसका यह अर्थ हुआ कि समाज में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक कोई प्रगति ही नहीं हुई और वह एक प्रकार से जड़ सा है। अपने मत की पुष्टि में विद्वानों ने कला का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन्होनें कहा कि प्रत्येक कलाकृति अपने आप में अद्वितीय है, चाहे वह यूनानी हो, रोमन अथवा चीनी हो और चाहे भारतीय। यदि हम भारतीय कला की भी बात करें तो चालुक्यों की कला होयसल और चंदेलों से भिन्न थी और मुगल कला ब्रिटिश कला से। इनमें समानतायें ढूंढना न तो सम्भव है और न ही उचित क्योंकि सबकी अलग-अलग विशेषतायें थी। इस आधार पर जो विद्वान इतिहास की पुनारावृति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते उनका दृढ़ मत है कि समस्त तथ्यों में एक समान नमूना ढूढंने का प्रयास व्यर्थ और निरर्थक है।

इतिहास की पुनरावृत्ति होती है या नहीं इस विषय में पड़ना निरर्थक है। न तो इतिहास की उस रूप में पुनरावृत्ति होती है जिस रूप में इसके प्रतिवादिक मानते हैं, और न ही यह मानना उचित है कि अलग-अलग युग में घटने वाली घटनाओं में कोई समानता नहीं होती। वैचारिक स्तर पर यदि देखा जाये तो हर घटना में चाहे वह किसी भी युग में घटी हो, एक निश्चित नमूना या समान योजना देखी जा सकती है, परन्तु जब ये घटनायें घटती हैं तब उनका स्वरूप भिन्न हो जाता है। इसको अनेक उदाहरणों से सिद्ध किया जा सकता है उदाहरण के लिये हम विश्व की प्रमुख क्रांतियों और उनके परिणामों को ही लें। फ्रांस, रूस और अमेरिका की क्रांतियों के मूल में जनता की दयनीय आर्थिक स्थिति, शासन की निरंकुशता और समाज में फैली अराजकता ही थी। परन्तु इनके परिणाम भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न हुए। फ्रांस की क्रान्ति का लाभ उठाकर नेपोलियन फ्रांस की सत्ता पर हावी हो गया परन्तु अमेरिका की क्रांति का नेतृत्व करने के बावजूद भी जॉर्ज वाशिंगटन अमेरिका में निरंकुश या सैनिक शासक नहीं बना। दूसरा उदाहरण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा समान ही होती है परन्तु फिर भी प्रत्येक व्यक्ति आकृति, दृष्टिकोण, बुद्धि एवं व्यवहार में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। क्रान्तियां, सुधार आन्दोलन, जागृति, प्रसारवाद, सामाजिक परिवर्तन आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जो विभिन्न देशों में हर युग में दिखाई पड़ते रहे परन्तु उनका स्वरूप और प्रभाव परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न समयों में भिन्न-भिन्न थे। परिवर्तन इतिहास का एक नियम है जिससे इस बात की पृष्टि होती है कि इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होती। परन्तु जिस रूप में परिवर्तन होते हैं उसमें एक पुनरावृत्ति की प्रक्रिया दिखाई पड़ती है इसीलिये इस विवाद में न पड़कर कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है या नहीं हमें ट्रेवेलियन (Trevelyan का यह मत सत्य के अधिक निकट दिखाई देता है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है तथा इतिहास की कभ पुनरावृत्ति नही होती (History repeats itself and history never repeats itself)।

इसी क्रम में इतिहासकारों का एक मत और है और वह यह कि समस्त इतिहास समसामयिक इतिहास है। क्रोचे (Croce) इस मत का प्रमुख प्रतिपादक है जिसकी यह मान्यता है कि अतीत और वर्तमान एक समा प्रक्रिया की कड़ी से परस्पर जुड़े हैं। आधुनिक विचारक कॉलिन्गवुड (Collingwood) भी इस मत व स्वीकार करता है और उसका मानना है कि इतिहास और कुछ नहीं वरन अतीत के अनुभवों की पुनरावृत्ति है यह विचारधारा यूनानियों की इतिहास की व्याख्या से मेल खाती है। थूसीडाइडस (Thucydides) ने कह कि समस्त ऐतिहासिक तथ्य तार्किक और स्थाई रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस मत को इतिहास का रैखिक सिद्धान्त (Linear view of History) कहा जा सकता है। इस मत के अनुसार प्राचीन काल

लेकर आधुनिक काल तक इतिहास का क्रम एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है और इतिहास का प्राचीन, मध्यकालीन या आधुनिक कालों में विभाजन अर्थहीन व तर्कहीन है। उनके अनुसार जो प्राचीन है वो ही आधुनिक है और जो आधुनिक है वही प्राचीन है। अपने मत के पक्ष में वे कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि समाज पर धर्म की पकड़ अथवा प्रभाव उतना ही मजबूत आज भी है जितना मध्य या प्राचीन काल में था, भारत में था अथवा यूरोप में था। कृषि प्राचीन काल में भी भारतवासियों की आजीविका का साधन थी और आज भी है। भारत पहले भी गांवों में बसता था और सारी प्रगति और आधुनिकीकरण के बाद भी आज भी गांव में बसता है। हमने कितनी भी प्रगति क्यों न कर ली हो सुकरात, होमर, कौटिल्य, मैक्यावेली, कालिदास एवं तुलसीदास आज भी उतने ही प्रासांगिक हैं जितने अपने-अपने युगों में।

यूनानियों के द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के बीच एक निरन्तर सम्बन्ध के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए तथा समस्त इतिहास को सम-सामयिक मानने के पक्ष में क्रोचे और कॉलिन्गवुड ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं। क्रोचे के अनुसार समस्त इतिहास एक सर्वोच्च आत्मा है जो अविछिन्न और अविभाज्य है, परन्तु इसके 4 भिन्न-भिन्न पहलू हैं--कला (Art) आचार-विचार (Ethics), तर्क (Logic) और अर्थशास्त्र (Economics)। बी० शेखअली ने लिखा है कि चूंकि इतिहास में सभी घटनायें या तो किसी कारण से प्रेरित होती हैं जो तर्क हो गया; या आवश्यकता से प्रेरित होती हैं जो अर्थशास्त्र हो गया; या प्रेम एवं नैतिकता से प्रेरित होती हैं जो आचार-विचार हो गया या सुन्दर वस्तुओं की रचना से होती हैं जो कला हो गया। इसीलिये उनका यह निष्कर्ष है कि दार्शनिक तौर पर हम यह कह सकते हैं कि इतिहास में समस्त घटनाओं की उत्पत्ति एक समान प्रक्रियाओं से है। दूसरे शब्दों में समस्त इतिहास सम-सामयिक इतिहास है । चूंकि मानव प्रकृति एक सी रहती है इसलिये वे सारे कार्य-कलाप, जो उनकी प्रकृति के कारण उत्पन्न होते हैं, तथ्य रूप में भिन्न नहीं होगें, आकृति में भले हो जायें। कॉलिन्गवुड का तर्क थोड़ा सा भिन्न है। वह यह कहता है कि इतिहास लेखन एक मानसिक क्रिया है जिसमें इतिहासकार अतीत की घटनाओं के अध्ययन के बाद अपने मन में एक छवि बनाता है। यह छवि अतीत का प्रतिबम्ब होती है जो वह अपने मस्तिष्क में पुनर्निर्मित करता है। घटनायें अतीत की होती हैं परन्तु इतिहासकार वर्तमान युग में होता है। चूँकि इतिहासकार आधुनिक समय की परिस्थितियों और विचारों से बंधा होता है जो जब वह अतीत का अध्ययन करता है उसमें आधुनिक विचारों का समावेश खुदबखुद हो जाता है और इस प्रकार अतीत और वर्तमान एक हो जाते हैं।

इतिहास लेखन में एक प्रवृत्ति और है और वह यह है कि इतिहासकार इतिहास चाहे किसी युग का क्यों न लिख रहा हो परन्तु उसमें उस देश या युग की झलक जरूर मिल जायेगी जिसमें वह रहा है। उदाहरण के लिये यूनानियों ने इतिहास की तार्किक व्याख्या की; चर्च इतिहासकारों ने अपने इतिहास में ईश्वर को सर्वोपरि रक्खा; फ्रांसीसियों ने इसको समाजवादी तथा ब्रिटिश ने भौतिकवादी और जर्मनों ने इसे दार्शनिक रंग दे दिया। इसलिये हर युग का इतिहास लेखन दूसरे युग से भिन्न रहा। इतना ही नहीं, एक इतिहाकार का इतिहास लेखन दूसरे इतिहासकार के लेखन से भी भिन्न रहा। उदाहरण के लिये हम भारतवर्ष को लें जो लम्बे समय तक विदेशी आधिपत्य में रहने के बाद स्वतन्त्र हुआ। भारतवासियों की यह इच्छा हुई कि अपने शासकों के द्वारा लिखे गये इतिहास को दोबरा से स्वंय लिखें। उनके इतिहास में, न चाहते हुए भी भावनाये हावी रही और वस्तुनिष्ठता (objectivity) के स्थान पर वह व्यक्तिपरक अथवा आत्मपरक (subjective) हो गया। भारत

के राष्ट्रवादी इतिहासकारों के इतिहास लेखन में एक त्रुटि आजाना स्वाभाविक है जिसे बी० शेखअली ने 'देशभक्ति सम्बन्धी त्रुटी' (Patriotic error) कहकर पुकारा है।

इतिहास की प्रकृति के सम्बन्ध में एक विवाद यह भी है कि इतिहास लेखन में मूल्य-निर्णय (value-judgements) होने चाहिये अथवा नहीं। कुछ विद्वान मानते हैं कि मूल्यांकन और उनके आधार पर इतिहासकार का अपना निर्णय ये दोनों ही एक अच्छे इतिहास के आवश्यक तत्व हैं। लार्ड एक्टन के विचार में मूल्य-निर्णय अच्छे इतिहासकार के लेखन के लिये न केवल अपेक्षित है वरन् एक आवश्यक तत्व है। परन्तु विद्वानों का एक अन्य वर्ग भी है जो इस मत को स्वीकार नहीं करता। उनका विचार है कि एक इतिहासकार का कार्य है केवल मात्र अतीत का पुनर्निर्माण तथा तथ्यों को बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत कर देना जैसे कोई बावर्ची किसी भी व्यंजन को बिना सजाये हुए प्रस्तुत कर दे। राँके और बरी इस विचारधारा के प्रतिपादक हैं और उस बात के सख्त विरोधी हैं कि एक इतिहासकार इस प्रकार के निर्णयात्मक कथन दे-'सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट करती है और असीमित सत्ता पूरी तरह भ्रष्ट करती है' (Power currupts man and absolute power currupts absolutely)। बरी ने कहा कि इतिहास लेखन की वैज्ञानिक पद्धति को दो तत्वों ने अत्यधिक ठेस पहुँचाई-एक था राष्ट्रवाद तथा दूसरा था इतिहास का दर्शन। राष्ट्रवादी विचारधारा ने कुछ युगों को स्वर्ण युग कहकर पुकारा तथा अन्य को अंधकार युग। कुछ इतिहासकारों के ऊपर दर्शन शास्त्र का इतना अधिक प्रभाव रहा कि उन्होने इतिहास को दर्शन शास्त्र ही बना दिया। ऐसे विद्वानों की श्रेणी में आते हैं हीगेल, कॉमटे एवं स्पैन्गलर। परन्तु यदि हम राँके ओर बरी की विचारधारा से सहमत हों और इतिहास में अपनी विचारधारा के अनुरूप विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में अपना कोई मत न दे, घटनाओं से कोई निष्कर्ष न निकालें या उनका कोई मूल्यांकन न करे तो इतिहास बिल्कुल नीरस हो जाएगा। ऐसा इतिहास रोचक इतिहास न होकर घटनाओं का एक शुष्क विवरण मात्र बन कर रह जाएगा। इसलिये कुछ विद्वानों का यह दृढ़ मत है कि इतिहास हमें यह तो बताता ही है कि अच्छाई को हमेशा पुरस्कृत किया जाता है और बुराई की हमेशा निन्दा की जाती है या दण्ड दिया जाता है, परन्तु बहुत अधिक मूल्य-निर्णय या नैतिकता का समावेश भी इतिहास को इतिहास नहीं रहने देंगे वरन् दर्शन-शास्त्र या आचार शास्त्र में परिवर्तित कर देंगे।

इतिहास की रैखिक अथवा चक्रीय प्रकृति (Linear or Cyclic Nature of History)—कुछ विद्वान इतिहास के क्रम को रैखिक मानते हैं जब कि कुछ चक्रीय। रैखिक मत रखने वाले विद्वान इतिहास को एक सीधी रेखा मानते हैं जो अन्जाने अतीत से परिचित वर्तमान में होते हुए एक अन्जाने भविष्य की ओर जाती है। वह यह भी मानते हैं कि ऐतिहासिक घटनाओं में निरन्तरता होती है एवं वर्तमान और अतीत के मध्य एक जुड़ाव होता है जो उसे ठोस रूप प्रदान करता है। इतिहास की यह निरन्तरता है उसकी इस रैखिक प्रकृति का प्रमाण है। दूसरी ओर कुछ अन्य इतिहासकारों का एक वर्ग है जो ऐतिहासिक शक्तियों की प्रकृति को चक्रीय मानता है तथा उनके अनुसार इतिहास वृत में चलता है। वह यह मानते हैं कि प्रत्येक घटना का एक प्रारम्भिक बिन्दु होता है; उसके बाद वह ऊपर की ओर चलती है जब तक कि वह चोटी पर न पहुँच जाये; इसके बाद नीचे की ओर चलना शुरू करती है और निम्नतम् बिन्दु पर पहुँच कर वह समाप्त हो जाती है। यह प्रक्रिया दोबारा शुरू होती है और इस प्रकार जन्म, विकास, परिपक्वता, अवनति, पतन और विघटन की प्रक्रिया चलती रहती है। एक संस्कृति के पतन के बाद दूसरी संस्कृति का जन्म होता है और उसी प्रकार उत्थ

और चरमसीमा पर पहुँचने के बाद उसका भी उसी तरह अंत हो जाता है। विश्व की प्रमुख सभ्यताओं का उत्थान और पतन, चाहे वह मिस्र की सभ्यता हो या बेबीलोन की, यूनानी हो अथवा रोमन सभी इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

इन दोनों मतों से अलग तुर्गो (Turgot) एवं कोन्डोर्से (Condorcet) ने एक अलग ही विचार का प्रतिपादन किया है और वह विचार है प्रगति का। उनके अनुसार प्रगति का अर्थ है एक कम अच्छी से बेहतर स्थिति तक पहुँचने की प्रक्रिया। उन्होने एक बीज का उदाहरण देकर इसको समझाने का प्रयास किया है कि एक छोटा सा दिखने वाला बीज एक विशाल वृक्ष में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार एक छोटा सा दिखने वाला एवं शक्तिहीन व्यक्ति ऊंचाई की हर सीमा को पार कर जाता है। इसी प्रकार छोटी-छोटी दिखने वाली घटनायें इतिहास रच देती हैं। इस प्रकार यह प्रगति का सिद्धान्त विकास के सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है।

निषकर्ष- उपर्युक्त वर्णन के बाद यह समझ में आता है कि इतिहास की प्रकृति अत्यन्त जटिल है। इतिहास के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं और अधिकांशत: एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। परन्तु कोई भी विद्वान अथवा इतिहास का छात्र इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि इतिहास की प्रकृति गतिशील है तथा उसका सम्बन्ध जीवन के परिवर्तनशील नाटक से है जिसका एक उद्देश्य होता है और अर्थ भी। एक इतिहासकार को तीन मुख्य मुद्दों से जूझना पड़ता है— समस्या का क्या (what), कैसे (how) एवं क्यों (why)। उसे इन तीनों मुद्दों की व्याख्या उन घटनाओं के समय, प्रकृति और उनकी सीमा के सन्दर्भ में करनी होती है। अंत में हम नेमियर (Namier) के शब्दों में कह सकते है, "एक इतिहासकार का कार्य एक चित्रकार के अधिक निकट है अपेक्षाकृत एक कैमरामैन के..... इतिहास में जिस चीज का महत्व है वह है महान रूपरेखा तथा महत्वपूर्ण विवरण, जिस चीज से बचना चाहिये वह है निर्जीव विवरण। इसलिये इतिहास आवश्यक रूप से व्यक्तिनिष्ठ और व्यक्तिगत होता है।

● इतिहास का महत्व (Importance of History)

इतिहास के महत्व के सम्बन्ध में यद्यपि अधिकांश विद्वान इसके महत्व को समझते हैं तथा इतिहास का अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक मानते हैं, परन्तु ऐसे भी कुछ विद्वान हैं जो इतिहास के अध्ययन को व्यर्थ मानते हैं। उनका विचार है कि व्यक्ति को अपने वर्तमान में खुश रहना चाहिये तथा अतीत के सम्बन्ध में जानकारी को प्राप्त करना समय को नष्ट करना है।

इतिहास के अध्ययन के विरूद्ध दृष्टिकोण (Views Against the Study of History)—हेनरी फोर्ड ने लिखा है—"इतिहास एक लकड़ी का संदूक (Bunk) है।" हीगेल का मत है कि इतिहास से जो एकमात्र सबक हम सीखते हैं वह यह कि इसके पास देने के लिये कोई सबक ही नहीं है। यह विद्वान इतिहास के अध्ययन के विरूद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

1. वे मानते हैं कि अतीत के अध्ययन का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है क्योंकि अतीत में मनुष्य कठिन परिस्थितियों में रहता था जो आज से बिल्कुल भिन्न थी। इतिहासकार अतीत का लेखा-जोखा देखने में अपना बहुत समय लगाता है और इस प्रकार अतीत की तुलना में वर्तमान के महत्व को कम कर देता है। इस प्रकार वह वर्तमान की उपेक्षा कर देता है। इसलिए इन विचारों के अनुसार इतिहास के अध्ययन का कोई महत्व नहीं है।

2. कुछ विचारकों का यह मत है कि यदि आध्यात्मिक दृष्टि से भी देखा जाये तो इतिहास का अध्ययन बेमानी है क्योंकि इतिहास वास्तविक और स्थायी सत्य पर बल न देकर लौकिक घटनाओं का ही वर्णन करता है।

3. दार्शनिक दृष्टिकोण से भी इतिहास के अध्ययन का कोई विशेष महत्व नहीं दिखाई पड़ता। वस्तुत: अपने शोध में इतिहासकार के समक्ष कोई वस्तुनिष्ठ विश्व नहीं होता है क्योंकि विचारों के बाहर किसी विश्व का अस्तित्व होता ही नहीं है। सभी कुछ विचारों में ही निहित है। इसलिये दार्शनिक ये मानते हैं कि उसके बाहर किसी भी चीज को खोजा जा ही नहीं सकता।

4. कभी-कभी अतीत का अध्ययन पूर्वाग्रहों से ग्रसित होता है, इसलिये इतिहास का अध्ययन संदेहपूर्ण है। चूंकि पूर्वाग्रह इतिहासकार पर हावी होते हैं, इसलिये वह तथ्यों का वर्णन अपनी सोच के अनुरूप अपने ही तरीके से करता है। परिणामस्वरूप इतिहास का वास्तविक महत्व समाप्त हो जाता है। इतिहासकार अपने लेखन में स्रोत सामग्री दूसरों से लेता है और कभी-कभी यह स्रोत परस्पर विरोधाभासी होते हैं। इसलिये यह पूरी तरह से इतिहासकार की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह घटनाओं का वर्णन या व्याख्या किस प्रकार से करे।

आधुनिक युग में विज्ञान एवं तकनीकी की चकाचौंध में इतिहास के महत्व की उपेक्षा करना स्वाभाविक ही लगता है। इतिहास पर यह दोषारोपण किया जाता है कि इसके न तो स्पष्ट उद्देश्य हैं, न कोई विशिष्ट पद्धति है और न ही इसके निष्कर्षों की कोई विश्वसनीयता है। ये विचारक ये भी आक्षेप लगाते हैं कि इतिहास उबा देने वाले वर्णन और तिथियों का संग्रह है। उनका यह भी कहना है कि इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त सब कुछ गलत है। कभी-कभी यह भी आक्षेप लगाया जाता है कि इतिहास एक प्रकार का झूठा प्रचार है जिसमें उग्र राष्ट्रीय भावनाओं का इतना बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया जाता है कि सत्य पूरी तरह छिप जाता है। एक चीनी विद्वान ने भारतीय इतिहास पढ़ने के बाद यह शिकायत की कि यह तो एक टेलीफोन डायरेक्टरी के समान था जिसमें राजवंशों और तिथियों का ही उल्लेख था।

इतिहास के अध्ययन के पक्ष में दृष्टिकोण (Views in Favour of the Study of History)—उपर्युक्त सारी आलोचनाओं के बाद भी इतिहास के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। एक इतिहासकार ने लिखा है कि इतिहास का अध्ययन उसी प्रकार है जिस प्रकार सुदूरवर्ती देशों की यात्रा में हम एक संकुचित दायरे से बाहर निकल कर नई-नई चीजें देखते हैं उसी प्रकार इतिहास हमारे सामने मानव सभ्यता के पूरे विकास की यात्रा को झांकी प्रस्तुत करता है। इतिहास हमें इस बात को समझने में मदद करता है कि किस प्रकार मनुष्य ने धीरे-धीरे एक आरामदायक जीवन के साधन जुटाये और व्यवस्थित समाज और सुचारू राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की। इसलिये इतिहास का अध्ययन कोई समय की बर्बादी नहीं है वरन समय की आवश्यकता है। इतिहास का अध्ययन हमें यह बताता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। बी० शेख अली ने लिखा है कि जो देश अपने इतिहास को भूल जाता है उसका कोई भविष्य नहीं होता। जिन सभ्यताओं ने इतिहास की उपेक्षा की उनका शीघ्र पतन हो गया तथा जिन सम्प्रभुओं या राजनेताओं को इतिहास का अच्छा ज्ञान था जैसे फैड्रिक महान, नेपोलियन, चर्चिल और नेहरू, उन्होने इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

इतिहास का महत्व इस दृष्टि से भी है कि यह मनुष्य के ज्ञान, सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता में वृद्धि करता है। किसी भी समस्या या सिद्धान्त को तब तक पूरी तरह नहीं समझा जा सकता जब तक हमें उसकी पृष्ठभूमि का

सही-सही ज्ञान न हो। एक डाक्टर भी तब तक बीमारी का सही अनुमान नहीं लगा पाता है जब तक उसे उसकी पृष्ठभूमि का न पता हो। इतना ही नहीं, इतिहास हमें यह भी बताता है कि किन गल्तियों के कारण एक व्यक्ति अथवा वंश का पतन हुआ और किन कारणों से एक व्यक्ति को विजय प्राप्त हुई या किसी राजवंश ने उन्नति की। इतिहास का अध्ययन करके यह सम्भावना बन जाती है कि व्यक्ति पिछली गल्तियों को न दुहराये।

इतिहास हमें जीवन का अर्थ समझाने का प्रयास करता है। जब व्यक्ति जीवन के उद्देश्य खोजने की कोशिश करता है तब उसके दिमाग में अनेक प्रश्न उठते हैं, जैसे मैं कहा से आया हूँ, मैं क्यों जीवित हूँ तथा मुझे कैसे रहना चाहिये। जब वह अपने अतीत की वास्तविकता को खोजने का प्रयास करता है तो उसे यह जानकारी होती है कि उसने अनेक संस्थाओं को जन्म दिया, युद्ध लड़े और शांति संधियां की तथा जीवन को आरामदेह बनाने के लिये अनेक वस्तुओं का आविष्कार किया। इस प्रकार इतिहास व्यक्ति को जीवन और कार्यकलापों के सम्बन्ध में एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। यह ज्ञान उसके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है क्योंकि यह उसे एक मानसिक अनुशासन प्रदान करता है जो उसे समस्याओं से घबराये बिना उन्हें सुलझाने की शक्ति प्रदान करता है। अतीत का ज्ञान तथा इस बात का ज्ञान कि मनुष्य ने किस प्रकार असीम कठिनाईयां सहन करते हुए खुद को सभ्य और सुसंस्कृत बनाया है मनुष्य को समस्याओं से भागने के बजाय उन्हें सुलझाने की प्रेरणा प्रदान करता है।

इतिहास न केवल व्यक्ति को शिक्षित करता है वरन् उसके मस्तिष्क को प्रशिक्षित भी करता है। इससे पहले कि हम किसी विचार या पद्धति में सुधार का प्रयास करें हमारे लिये आवश्यक है कि सर्वप्रथम हम उस विचार अथवा पद्धति का इतिहास जान लें। वर्तमान अतीत से ही जन्मा होता है और हमारी वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ पूर्ववर्ती परिस्थितियों का ही परिणाम हैं। जब बर्ट्रेन्ड रसेल (Bertrand Russel) से पूछा गया कि इतिहास की आवश्यकता क्या है तो उसने उत्तर दिया कि मेरे विचार में यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है; यह स्थायित्व प्रदान करता है और विचारों और भावनाओं को गहराई प्रदान करता है।

बच्चों को इतिहास इसलिये पढ़ाया जाता है क्योंकि वह उनकी स्मृति, कल्पनाशीलता और तर्कबुद्धि को विकसित करता है। इतिहास युवा मस्तिष्कों में उचित और अनुचित का ज्ञान पैदा करता है। यह उनमें देश-भक्ति की भावना पैदा करता है क्योंकि अपनी समृद्ध विरासत तथा अतीत के गौरव के विषय में पढ़कर उनके मन में अपनी मातृभूमि के लिये प्रेम और गर्व उत्पन्न होता है। इतिहास के अध्ययन के महत्व पर बल देते हुए **कौलिन्गवुड** ने लिखा है, "इतिहास का अध्ययन मानव जीवन के लिये उपयोगी है। परिवर्तन की लय स्वयं को दोहराती रहती है क्योंकि समान घटनायें और समान परिणाम अक्सर दृष्टिगोचर होते हैं। यह न केवल घटित होने वाली घटनाओं की ओर संकेत करता है अपितु उन संकटों से भी अवगत कराता है जिनके आने की सम्भावना होती है।" **लैकी** ने भी लिखा है, "वह जिसने सच्चे चरित्रों को समझना सीख लिया है तथा आने वाले वर्षों की प्रवृत्ति को जान लिया है वह अपने विषय में अनुमान लगाने में अधिक गल्ती नहीं कर सकता। विचारकों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि हमारी भविष्य की सभी उम्मीदें अतीत के विस्तृत ज्ञान पर आधारित हैं। आधुनिक युग के विकसित समाजों को इतिहास की बहुत आवश्यकता है। इतिहास के बिना समाज वैसा ही है जैसे स्मृति के बिना एक मनुष्य।" **सिसरो** ने सही ही कहा है, "यह न जानना कि आपके जन्म से पहले क्या हुआ था इसका मतलब यही है कि आप हमेशा एक बच्चा ही बने रहेंगे।" अन्त में हम **थॉमस मुनरो** के शब्दों

में कह सकते हैं, "इतिहास के कुछ पृष्ठ मानव मस्तिष्क को इतनी अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं, और वह भी सहजता से, जितनी की अध्यात्मिक विषयों पर प्रकाशित समस्त ग्रस्थ भी नहीं कर सकते।"

● इतिहास का क्षेत्र (Scope of History)

इतिहास सबसे पुरातन विषयों में से एक है। प्राचीन काल में कुछ ही अच्छे इतिहासकार थे। वे केवल कुछ घटनाओं का ही वर्णन करते थे और उनका लेखन कार्य केवल कुछ युद्धों, कुछ व्यक्तियों की सैनिक उपलब्धियों एवं धर्म एवं मानव जीवन में उसके महत्व तक ही सीमित था। उनकी रचनाओं में उन कुछ राजाओं का यशगान होता था जिनके वे आश्रित होते थे। बी० शेखअली ने भी लिखा है कि समय के साथ इतिहास के क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है और उसमें नवीन क्षेत्र जुड़ गये हैं। इतिहास धीरे-धीरे तीनों आयाम ग्रहण कर रहा और उसका मुख्य कार्य अब यह वर्णन करना हो गया है कि क्या हुआ, यह कैसे हुआ और इस बात का विश्लेषण करना कि यह क्यों हुआ। यह अपने क्षेत्र में भी निरन्तर बढ़ रहा है। अब इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं की एक विवरणात्मक सारिणी नहीं रह गया है जिसमें राजवंशों के उत्थान और पतन, राजाओं ए युद्ध तथा संधियों का ही वर्णन हो। अब इतिहास में मानवीय तत्व भी आ गया है और मनुष्य की सा गतिविधियों, सामाजिक कार्यकलापों, आर्थिक प्रयासों तथा जीवन में प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं का विस्तृत वर्णन होता है। इतिहास अब साहित्य, राजनितिशास्त्र अथवा दर्शनशास्त्र अथवा अन्य किसी विषय क एक शाखा मात्र नहीं रह गया है। अब इतिहास का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। इस प्रकार अनेक परिवर्तनों कारण इतिहास के क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है। प्रारम्भ में इतिहास राजनीतिक घटनाओं का वृत्तान्त मात्र थ मध्ययुग में धर्म का प्रभाव बढ़ने के कारण धार्मिक इतिहास अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। आधुनिक युग में पदार्प के साथ इतिहास का चरित्र बदला। जैसा कि 'कोहेन' ने लिखा है अब इतिहास का सम्बन्ध केवल साम्राज्यों वंशावलियों के उत्थान-पतन से नहीं रह गया है। अब यह सामाजिक घटनाओं जैसे— सामाजि रीति-रिवाजों, परम्परओं, शिक्षा, धर्म, मनोरंजनो के साधनों, खाद्य एवं पेय, वस्त्राभूषण आदि का भी विवेच करने लगा है।

सामाज के विकास के साथ इतिहास के क्षेत्र में भी निरन्तर विकास होता जा रहा है। वस्तुत: इतिहासक ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपने अध्ययन का विषय बना लिया, इसलिये इतिहास के अध्ययन क्षेत्र उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। पहले के इतिहास में केवल कुछ व्यक्तियों को महत्व दिया जाता था सामान्य व्यक्ति की भूमिका का कोई उल्लेख ही नहीं किया जाता था। उदाहरण के लिये नेपोलियन महान विजयों एवं उपलब्धियों का श्रेय केवल उसी को दिया जाता था किन्तु उन सामान्य व्यक्तियों का कोई उल्ल नहीं होता था जिनका उसको महान बनाने में महत्वपूर्ण योगदान था। परन्तु अब इतिहासकारों ने अपना ध्य जन-सामान्य, महिलाओं और बच्चों की ओर लगाया है जिससे उनकी भूमिका और योगदान पूर्णतया विस्मृ हो जाये।

इतिहास के क्षेत्र में विस्तार होने का एक कारण यह भी है कि अब इतिहास के अन्तर्गत मानवीय ज के अनेकानेक कार्यकलाप सम्मिलित किये जाने लगे हैं। अब इतिहासकार मानव के सभी क्षेत्रों में उपलब्धि का आकलन करने लगा है, चाहे विज्ञान अथवा तकनीकी के सम्बन्ध में हो अथवा आधुनिक अविष्कार सम्बन्धित हो । विभिन्न वंशों के उत्थान-पतन एवं उनके शासन काल के दौरान हुई उपलब्धियों के वर्ण

नथ-साथ अब इतिहासकारों ने कला, विज्ञान एवं सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं पर भी ध्यान करना शुरू र दिया है। अब इतिहास में मानव जीवन का कोई भी पक्ष अछूता न रह जाने के कारण इतिहास के क्षेत्र में त्यधिक विस्तार हुआ है।

एक आधुनिक विद्वान ने लिखा है कि इतिहासकार के मुख्य रूप से दो काम होते हैं। पहला तो है घटना सम्बन्ध में तथ्यों को एकत्रित करना तथा दूसरा उन तथ्यों की व्याख्या। प्रथम कार्य वस्तुनिष्ठ होना चाहिये था वैज्ञानिक। दूसरा भाग विषयपरक है और इसीलिये मानवीय। **ट्रैवेलेयन** के अनुसार एक इतिहासकार को ीन विशिष्ट कार्य करने होते हैं— वैज्ञानिक, कल्पनाशील एवं साहित्यिक। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकृति का ध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि बड़े-बड़े पर्वत, नदियों और भौगोलिक वातावरण का भी मनुष्य के त्थान और पतन अथवा भाग्य के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। उदाहरण के लिये सिंधु नदी, गंगा एवं हिमालय र्वत ने भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसी प्रकार पानीपत, प्लासी और वाटरलू क्रमशः बाबर, क्लाइव एवं नेपोलियन के जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। इसीलिये इतिहास के क्षेत्र में कृति का भी वर्णन अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मनुष्य के जीवन में उसने हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका अदा ी है।

आधुनिक युग में सूक्ष्म इतिहास लेखन के महत्व पर बल दिया जा रहा है। इतिहास के विद्वान ग्रामीण रिवेश और संस्थाओं के विस्तृत एवं गहन अध्ययन की ओर आकर्षित हो रहे हैं तथा देश के सामाजिक एवं ार्थिक विकास में उनकी रूचि दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। उनका ध्यान अब कृषक आन्दोलनों, वर्ग-संघर्ष, हिलाओं की स्थिति, कला एवं उद्योग तथा सामाज में होने वाली अन्य घटनाओं की ओर भी जा रहा है। अब तिहास लेखन के साथ-साथ इतिहास दर्शन का लेखन भी महत्वपूर्ण होता जा रहा है। मार्क्स, हीगेल, स्पेन्गलर और कॉमटे आदि विद्वानों ने समाज के उत्थान, पतन और विकास का चित्रण किया है जो इस बात का स्पष्ट माण है कि इतिहास के क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

धीरे-धीरे अब इतिहास में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के अध्ययन का महत्व बढ़ता जा रहा है। साम्यवादी देशों में पूरा का पूरा ध्यान मार्क्सवाद तथा वर्ग-संघर्ष पर है। धीरे-धीरे श्रमिक आन्दोलन, र्ग-संघर्ष, आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, कला, दस्तकारी, उद्योग, वाणिज्य एवं व्यवसाय, कृषि एवं कृषक आन्दोलन इतिहासकार का अधिक ध्यान आकृष्ट कर रहें है। इसी प्रकार सामाजिक सुधार, जाति एवं र्ग भेद, परिवारिक जीवन, स्त्रियों की स्थिति, परम्परायें, जीवन-यापन के तरीके ये सब भी इतिहास में म्मिलित हो रहें हैं। इतिहास लेखकों का ध्यान विचारों और संस्थाओं के इतिहास पर भी अधिकाधिक जाने गा है।

अब इतिहास का स्वरूप विश्व-व्यापी हो गया है। संचार साधनों के विकास के कारण देश परस्पर क-दूसरे के निकट आ गये हैं। अब इतिहास केवल एक देश का नहीं वरन् सम्पूर्ण का इतिहास बन गया है। ाना ही नहीं, इतिहास में अब अन्य विषयों का भी समावेश हो गया है जैसे समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, द्राशास्त्र, नृविज्ञान, आदि । इस प्रकार निरन्तर इतिहास का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। 19 वीं शताब्दी का इतिहास वल राजनीतिक घटनाओं के अध्ययन तक सीमित था परन्तु अब इतिहास के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक,

नैतिक एवं व्यक्ति के भावात्मक एवं साहित्यिक जीवन का विवरण महत्वपूर्ण बन गया है। इस प्रकार सम दृष्टिकोण परिवर्तित होकर जनसाधारण के समीप केन्द्रित हो गया है।

इतिहास की विषय-वस्तु (Subject Matter of History)— इतिहास प्रमुख रूप से म और उसके क्रियाकलापों का वर्णन है। परन्तु हम इतिहास में व्यक्ति के महत्वहीन कार्यों का अध्ययन नहीं व वरन् उन्हीं कार्य-कलापों का वर्णन करते हैं जो महत्वपूर्ण या अद्वितीय होते हैं तथा उनका इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कॉलिन्गवुड ने लिखा है कि ऐतिहासिक ज्ञान अतीत में मस्तिष्क के द्वारा किये कार्यों का ज्ञान है। उसने अपनी बात को अपनी पुस्तक 'द आइडिया ऑफ हिस्ट्री' में समझाते हुए लिखा है इतिहास की विषयवस्तु न तो क्रांति, परम्परा और संस्कृति जैसे सामान्य तथ्य हैं और न ही युद्ध अथवा म व्यक्तित्व जैसे विशिष्ट तथ्य, वरन् इतिहास की विषय वस्तु है 'विचार'। उन्होंने इसे नेपोलियन और हिटल उदाहरणों से और अधिक स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि यदि नेपोलियन के वर्णन में से उसके वि को निकाल दिया जाये तो वह भी लाखों साधारण लोगों की तरह हो जाएगा जिनका इतिहास में कोई जिक्र नहीं आता। उसके विचारों की विशिष्टता, जैसे उसकी महाद्वीपीय व्यवस्था या सिविल कोड उसे इतिहा महान स्थान का अधिकारी बनाते हैं। इसी प्रकार हिटलर भी एक आम जर्मन नागरिक बनकर रह जाता उसमें असीमित अकांक्षायें न होती या अपनी जाति की श्रेष्ठता का सिद्धान्त उसने न रक्खा होता। विद्वा लिखा है कि इतिहास मानव के अनुभव का वर्णन है तथा अनुभव ज्ञान का स्रोत तथा बुद्धि का फल है। व ज्ञान और अनुभव ही व्यक्ति को उसके कार्य में पूर्णता प्रदान करते हैं।

इतिहास की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणाओं का वर्णन मिलता है। प्रथम, विषय- के सम्बन्ध में इतिहासकारों का दृष्टिकोण और द्वितीय, विषय-वस्तु की दार्शनिक अवधारणा। दोनों धार के प्रतिपादक विद्वानों ने अतीत का आकलन अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार से किया है।

विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतिहासकारों का दृष्टिकोण (Viewpoint of Historians towards Subject Matter)— इतिहासकार विषय वस्तु का निर्धारण करता है युग की साम आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार। टॉयनबी ने लिखा है कि मानव जीवन से सम्बन्धित समस्त इतिहास की विषय-वस्तु हैं । प्राचीन यूनान में इतिहास को ज्ञान की पिपासा शांत करने का साधन माना था। हेरोडोटस और थ्यूसीडाइड्स ने इतिहास की विषय-वस्तु का चयन अपने पूर्वजों की स्मृति को अमर के लिये किया था।

रेनियर ने इतिहास को एक कहानी बताया है तथा हेनरी पिरेन ने लिखा है कि इतिहास समाज में करने वाले मानवों के कार्य और उपलब्धियों की कहानी है। प्रो० राउस समाज के सभी पक्षों के वर्ण इतिहास की विषय-वस्तु मानता है।

आधुनिक युग के अधिकतर इतिहासकार इतिहास की विषय-वस्तु को मानोविनोद या साम मनोरंजन का साधन मानते हैं। इन इतिहासकारों में प्रमुख हैं मैकॉले, सर वाल्टर स्कॉट और कार्लायल। तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता को प्राथमिकता दी है जिसके कारण धर्म और नैतिकता को भी इतिह विषय-वस्तु मान लिया गया है। परन्तु 20 वीं शताब्दी के वैज्ञानिक इतिहासकारों ने इतिहास की विषय-व

परिवर्तित कर दिया तथा अब तक लिखे गये इतिहास को काल्पनिक रचनाओं और इतिहास की संज्ञा दे दी। इस प्रकार समय के साथ-साथ इतिहास की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतिहासकारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आते रहे हैं।

विषय-वस्तु के सम्बन्ध में दार्शनिक अवधारणा (Philosophical Concept About Subject Matter)— दार्शनिकों की मान्यता के अनुसार इतिहास की विषय-वस्तु में तथा प्रकृति विज्ञान की विषय-वस्तु में बहुत अन्तर है। इसीलिये इतिहासकार भिन्न-भिन्न पद्धतियों के द्वारा इतिहास की गवेषणा करता है। कॉलिन्गवुड ने लिखा है कि भूतकाल का ज्ञान मानव के मस्तिष्क का ज्ञान है। वह अतीत के कार्यों को वर्तमान के संदर्भ में देखता है। वस्तुत: उसकी विषय-वस्तु वैचारिक प्रक्रिया है। अत: प्रकृति के ज्ञान को ऐतिहासिक ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

इतिहासकार विचारों को प्रधानता प्रदान करता है, परन्तु केवल वही विचार जो महत्वपूर्ण हों तथा जिनकी इतिहासकार पुन: अनुभूति कर सके। कॉलिन्गवुड के अनुसार आत्मकथा को इतिहास मानकर साहित्य के एक अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है क्योंकि उसकी रचना अनैतिक सिद्धान्त पर होती है। वास्तव में इतिहासकार और इतिहास के मध्य की दूरी समाप्त होनी चाहिये। केवल वाक्यों की पुनरावृत्ति को इतिहास नहीं कहा जा सकता क्योंकि इतिहासकार तो निर्जीव वाक्यों को भी सजीव बनाकर प्रस्तुत कर देता है।

पहले भी उल्लेख किया गया है कि इतिहास केवल विशिष्ट घटना या व्यक्ति का अध्ययन होता है, परन्तु विचार के तत्व के बिना वह इतिहास निर्जीव सा लगता है। उदाहरण के लिए यदि समाज में रहने वाले व्यक्ति खाते-पीते या हंसते-रोते हैं तो उसमें काई इतिहास नहीं होता क्योंकि यह तो मानव की प्रकृति है। परन्तु नेपोलियन और हिटलर महत्वपूर्ण इसलिये थे क्योंकि उन्होंने कुछ विशिष्ट विचार दिये और लुई सोलहवाँ इसिलिये कि उसके समय में एक विशेष घटना हुई।

हीगेल समाज और राज्य को इतिहास की विषय-वस्तु मानता है क्योंकि मानव के व्यावहारिक जीवन और वस्तु-निष्ठता की अभिव्यक्ति उसकी क्रियाओं और संस्थाओं में पाई जाती है। अत: कला, धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं संस्कृति आदि इतिहास की विषय-वस्तु कही जा सकती है। कॉलिंगवुड के अनुसार सेनानायकों का इतिहास क्रमबद्ध एवं योजनापूर्ण होने कारण इतिहासकार अपने मस्तिष्क में उसके उद्देश्यों की पुन: अनुभूति कर सकता है। उसके उद्देश्य पूर्ण होने के कारण उसे इतिहास की विषय-वस्तु कहा जा सकता है। वास्तव में इतिहास से तात्पर्य रचनात्मक, मौलिक और विशिष्ट विचारों से है जिनको समझने की सार्मथ्य केवल बौद्धिक व्यक्ति ही में है। इसीलिये अंत में कहा जा सकता है कि इतिहासकार कार्यों के परिवेश में विचार को समझता है, इसलिये सभी इतिहास विचारों का इतिहास कहा जा सकता है।

● इतिहास का वर्गीकरण अथवा प्रकार (Classification or types of History)

ऐतिहासिक घटनाओं के विकास को ही इतिहास माना जाता रहा है। अतीत में इतिहासकारों ने केवल उन घटनाओं के विषय में ही लिखा जिनका अत्यधिक महत्व होता था या वे अत्यधिक महत्व की समझी जाती थी। प्रचीन काल में अधिकतर विद्वानों को राज्याश्रय प्राप्त होता था जिस कारण उन्होनें जो भी इतिहास लिखा वह सब अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिऐ लिखा। इसलिये उनके द्वारा लिखित इतिहास में इन राजाओं के यशोगान और उपलब्धियों का वर्णन है और यह वर्णन अधिकांशत: अतिशयोक्तिपूर्ण है। इस कारण जो भी

इतिहास लिखा गया वह पूर्वाग्रहों से ग्रसित था जिसे कुछ विद्वानों ने पक्षपातपूर्ण कहकर पुकारा है। मध्य युग में इतिहास में धार्मिक घटनाओं के विवरण की भरमार रही। अब तक इतिहास का विषय भी सीमित था और इतिहास, मिथक एवं आख्यान के बीच कोई अन्तर भी दिखाई नहीं देता। परन्तु धीरे-धीरे इसमें अन्तर दिखाई पड़ता है पुनर्जागरण के दौरान। इस अवधि में इतिहास के अध्ययन के क्षेत्र और विषय दोनों का विस्तार हुआ साथ ही साथ एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि इतिहासकार ने ऐतिहासिक स्रोतों के आलोचनात्मक परीक्षण पर भी बल देना शुरू किया। धीरे-धीरे इतिहासकार का ध्यान मात्र राजनैतिक इतिहास से हटकर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सैनिक, कूटनीतिक इतिहास के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं विश्व इतिहास की ओर आकर्षित हुआ। अब इतिहास लेखन केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रह गया वरन् उसमें समाज एवं अर्थ-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन भी शामिल हो गया।

1. राजनीतिक इतिहास (Political History)— इतिहास के निम्नलिखित प्रकार अथवा भेद बताये जा सकते हैं—

अतीत की राजनीति को इतिहास माना जाता था, जिस कारण समस्त इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास ही लिखा है। किसी भी इतिहासकार का सम्बन्ध किसी राजवंश, कुछ राजाओं एवम् उनकी उपलब्धियों कार्यकलापों अथवा कुछ युद्धों तक ही सीमित था। इसीलिये सारा का सारा इतिहास अशोक, चन्द्रगुप्त सिकन्दर, हिटलर, नैपोलियन की उपलब्धियों तक ही सीमित रहा। इतिहासकार चाहे किसी भी युग का रहा हो उसने राजनैतिक इतिहास का ही उल्लेख किया। अधिकांश इतिहासकार दरबारी इतिहासकार थे और उनका लेखन अपने आश्रयदाता नरेश के यशोगान तक ही सीमित था। इसीलिये हुमायूँनामा, आइन-ए-अकबरी पृथ्वीराज रासो एवं हर्षचरित जैसे ग्रन्थों की रचना हुई । चूँकि समाज की सारी गतिविधियाँ राजनीतिक थी और वे भी कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित थी इसलिये उस समय तक का सारा इतिहास राजनीतिक होना स्वाभाविक ही था। ऐसे वातावरण में सामान्य व्यक्तियों की ओर ध्यान जाना सम्भव नहीं था। थ्यूसीडाइड्स, मैकॉले और गिब्बन ने जिन ग्रन्थों की रचना की उनका आधार राजनीतिक इतिहास ही था। इसीलिये राउस नामक विद्वान राजनीतिक इतिहास को इतिहास की रीढ़ कहकर पुकारा है।

राजनीतिक इतिहास अब भी लिखा जाता है परन्तु अब उसमें दो अन्तर आ गये हैं। पहला तो यह कि अब किसी भी घटना के राजनीतिक कारणों अथवा परिणामों के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक कारण और परिस्थितियों को भी उतना ही महत्व दिया जाता है। दूसरा यह कि नेताओं एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों वर्णन के साथ-साथ जनसाधारण के योगदान का भी पर्याप्त उल्लेख किया जाता है।

2. सामाजिक इतिहास (Social History)—सामाजिक इतिहास का लेखन आधुनिक युग देन है। सामाजिक इतिहास के अन्तर्गत व्यक्तियों के सामाजिक जीवन का वर्णन आता है जिसमें हम नैतिकता, आचार-व्यवहार, वस्त्र,मनोरंजन, खान-पान आदि का अध्ययन करते हैं। सामाजिक इतिहास महत्व बताते हुए **ट्रैवेलियन** ने लिखा है, "सामाजिक इतिहास के बिना आर्थिक इतिहास बंजर एवं राजनैतिक इतिहास अवर्णनीय है। समाज ही इतिहास ही आधारशिला है।" **टॉयनबी** के अनुसार, " इतिहास का निर्म सामाजिक अणु तत्वों से हुआ था।" **रील (Riehl)** और **फ्रेस्टग (frestag)** प्रथम विद्वान थे जिन्होंने एवं आधुनिक काल में जर्मनी का जो सामाजिक जीवन था और जो परम्परायें एवं रीति-रिवाज थे उनका

किया है। सामाजिक इतिहास को महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय बनाने में ट्रेवेलियन की भूमिका महत्वपूर्ण रही। गेट्ज (Goetz), जौन रिचर्ड (John Richard), बीट्रिक वैब (Beatric Webb), टर्नर (Turner) एवं हॉकर (Hocker) आदि विद्वानों ने अपने लेखन के माध्यम से इंग्लैण्ड के सामाजिक इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डाला। मैकॉले ने भी अपनी पुस्तक 'इंग्लैण्ड का इतिहास' में इंग्लैण्ड के सामाजिक इतिहास पर पूरा एक अध्याय लिखा है। इसी प्रकार जॉन रिचर्ड एवं ग्रीन ने अंग्रेजी सभ्यता के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है। इसी प्रकार फ्रांस में रामबो (Rambaud) ने फ्रांसीसी सभ्यता का सर्वेक्षण लिखा और मैकमास्टर (McMaster) ने अमेरिका के विकास के ऊपर लिखा है। के०पी० जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' में भारत की प्राचीन कालीन सामाजिक संस्थाओं के विषय में लिखा है। इन उल्लेखनीय लेखकों के अतिरिक्त अनेक लेखकों ने विभिन्न देशों में सामाजिक विकास की सामान्य प्रकृति, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के उद्भव और विकास, जाति, रीति-रिवाजों और परम्पराओं आदि के विषय में भी विस्तार से लिखा है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक समूहों एवं सामाजिक वर्गों आदि की अन्तर-क्रियाओं के आधार पर सामाजिक विकास का सामान्य ढाँचा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सामाजिक इतिहास की महत्ता बताते हुए रेनियर ने लिखा है, "सामाजिक इतिहास आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक इतिहास की कसौटी है।"

3. आर्थिक इतिहास (Economic History)—19वीं शताब्दी में आर्थिक इतिहास लेखन में बहुत अधिक वृद्धि हुई, यद्यपि इस विषय में लिखा पहले भी जाने लगा था। आर्थिक इतिहास के सम्बन्ध में पहला श्रेय **एडम स्मिथ** की रचना 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' को दिया जा सकता है। इसके द्वारा न केवल विस्तृत रूप से आर्थिक इतिहास के लेखन का कार्य प्रारम्भ हुआ वरन् उसने अनेक विचारकों को प्रभावित भी किया। इस पुस्तक से फ्रांस से अर्थशास्त्री तुर्गो (Turgot) और नेकर काफी प्रभावित हुए और उन्होंने भी स्मिथ की उन्मुक्त अर्थ व्यवस्था (Laissez faire) का समर्थन किया। जर्मन विद्वान हीरेन (Heeran) ने आर्थिक इतिहास के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। औद्योगिक क्रांति के बाद आर्थिक इतिहास में अभिरूचि बढ़ी और आर्थिक संस्थाओं का विशद अध्ययन किया जाने लगा। आर्थिक इतिहास लेखन में रोजर्स (Rogers), ऐशले (Ashely), कनिंघम (Cunningham) एवं लिप्सन (Lipson) आदि की उल्लेखनीय भूमिका रही। कॉल मार्क्स द्वारा 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' ने इतिहासकारों को इस दिशा में चिन्तन एवं लेखन के लिये प्रेरित किया। आर्थिक इतिहास को लोकप्रिय बनाने में कॉम्टे, कोंदोरसे एवं बर्कले की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। ऐशले ने लिखा है, "मानव ने आजीविका के साधनों के उत्पादन में अधिकतम संतोष प्राप्त करने के लिए क्या किया वही आर्थिक इतिहास है।"

हेनरी डेविड एवं उसके सहयोगियों ने 'संयुक्त राज्य का आर्थिक इतिहास' लिखा तथा जार्ज रेनाल्ड एवं उसके सहयोगियों ने 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ लेबर' की रचना की। 1917 की रूस की बोल्शेविक क्रांति के पश्चात आर्थिक इतिहास के महत्व की और अधिक गति प्राप्त हुई। आधुनिक भारतीय विद्वानों में रजनी पामदत्त, बिपिन चन्द्रा और इरफान हबीब ने आर्थिक इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

4. विधिक इतिहास (Legal History)— आधुनिक युग में विधिक इतिहास भी लिखा गया जिसमें इतिहासकारों ने कानून के विकास और कानूनी संस्थाओं को समझने का प्रयास किया है तथा यह भी दिखलाने का प्रयास किया है कि सामाजिक स्थिति में परिवर्तन ने किस प्रकार विधि विकास को प्रभावित किया। प्रत्येक देश की अपनी कानून संहिता होती है तथा प्रत्येक नागरिक को कानूनी पद्धति का पालन करना होता है।

प्राचीन एवं मध्य काल में राज्य की इच्छा एवं आज्ञा ही कानून थी; यदि कुछ कानून थे भी तो वे लिखित नहीं थे और उनमें समानता का पूर्णरूपेण अभाव था। ऐसी परिस्थिति में वैधानिक इतिहास लिखने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु वर्तमान युग कानून का युग है और विश्व के प्रत्येक देश में कानून के अनुसार ही शासन चलाया जाता है। इसलिये आधुनिक युग में विधिक इतिहास को महत्व प्राप्त हुआ। इसलिये इतिहासकारों ने विभिन्न विधियों के निर्माण एवं वैधानिक विकास के विषय में लिखना प्रारम्भ किया। वैधानिक इतिहास लेखन में आस्ट्रिया के गम प्लोलिज (Gum Ploulicz), जर्मनी के ब्रूनर (Brunner) एवं कोहलर (Kohler) तथा इंग्लैण्ड के ब्लैकस्टोन (Blackstone), पोलक (Pollock) तथा लास्की (Laski) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल से मध्य काल तक विधि-संहितायें बनती रही हैं, जैसे मनु की विधि-संहिता, हम्मूराबी का कोड तथा नैपोलियन का कोड आदि, जिनका संवैधानिक इतिहास में अपना अलग ही महत्व है।

5. सैन्य इतिहास (Military History)—प्राचीन काल में यूनान में थूसिडाइड्स ने पेलोपोनेशियन युद्ध का इतिहास (History of the Pelloponnesian war) की रचना की, इंग्लैण्ड में क्लेरेन्डन ने 'द ग्रेट रिबैलियन' (The Great Rebellion) की रचना की वस्तुत: सैन्य इतिहास राजनीतिक इतिहास से काफी हद तक जुड़ा हुआ है। यद्यपि युद्ध राजनीति का ही अंग था तथापि सैन्य इतिहास में युद्ध के कारणों, रणनीति, सैन्य संगठन एवं सैन्य सामग्री आदि का पृथक से एवं विशद अध्ययन किया जाता रहा है। आजकल सैन्य इतिहास एक अलग ही शाखा बन गई है तथा इसके लेखन पर पर्याप्त बल दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में एस०बी० फे का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने 'द ओरिजिन्स ऑफ द वर्ल्ड वार' The Origin of the World War) नामक पुस्तक की रचना की। प्रथम दो महायुद्धों का इतिहास भी लिखा जा चुका है

6. कूटनीतिक इतिहास (Diplomatic History)—कूटनीति भी राजनीति का ही एक अंग इसलिये कूटनीतिक इतिहास भी राजनीतिक इतिहास का एक भाग था। परन्तु अब उसने एक स्वतन्त्र विषय स्वरूप ग्रहण कर लिया है। प्राचीन काल में राज्य एवं राजा के बीच कोई अन्तर नहीं होता था। एक राजा दूसरे राजा से सम्बन्ध होता था तथा वे परस्पर गुप्त संधिया भी करते थे। राजदूतों को एक-दूसरे के देशों भेजा जाता था जिनकी अपनी कोई अलग से नीति नहीं होती थी वरन् भेजे हुए राजा के द्वारा दिये गये निर्देशों अनुरूप ही वे व्यवहार करते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कूटनीतिज्ञों के कर्त्तव्यों का विशद वर्णन मैकियावेली ने भी इसके ऊपर प्रकाश डाला है। परन्तु आधुनिक युग में कूटनीति राजनीति से पृथक मानी जा है और प्रत्येक राज्य के दूसरे देशों के साथ राजनीतिक अथवा कूटनीतिक सम्बन्ध होते हैं। इसलिये आधुनि युग में कूटनीतिक सम्बन्धों के ऊपर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि यह ग्रन्थ अधिकांश इतिहासकारों के स्थान पर राजनयिकों के द्वारा स्वयं ही लिखे गये। उदाहरण के लिये रिशलू, हेनरी किसिं एवं के० एम० पनिक्कर आदि ने इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे जो कूटनीतिक इतिहास की श्रेणी में आते आधुनिक युग में शीत युद्ध, क्षेत्रीय दलबन्दियों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के कारण कूटनीति इतिहास-लेखन निरन्तर महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

7. बौद्धिक इतिहास (Intellectual History)—प्राचीन काल में बौद्धिक इतिहास लेखन कोई परम्परा नहीं थी। प्रो० बार्ने ने लिखा है कि जिस प्रकार मानव मस्तिष्क मानव व्यक्तित्व और व्यवहा समन्वयकारक है उसी प्रकार किसी युग विशेष में प्रचलित चिन्तन मानव संस्कृति के विकास में सहायक

है। बौद्धिक इतिहास मूल विचारों और विचारधाराओं पर प्रकाश डालता है जिसने मानव इतिहास को स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सैमुअल जॉन्सन के अनुसार, "बौद्धिक इतिहास की तुलना में कोई भी इतिहास इतना उपयोगी नहीं है, क्योंकि इसके अन्तर्गत चिन्तन, विवेक और विज्ञान के विकास का अध्ययन किया जाता है।" बौद्धिक इतिहास का प्रणेता कार्ल लैम्परे (Karl Lamprecht) को माना जाता है, परन्तु बौद्धिक इतिहास को लोकप्रिय बनाने का कार्य किया प्रो० रोबिन्सन के तीन ग्रन्थों ने। इसने 'द ह्यूमैनाइजिंग ऑफ नॉलेज" (The Humanizing of Knowledge), 'माइंड इन द मेकिंग' (Mind in theMaking) तथा 'एन आउट लाइनऑफ हिस्ट्री ऑफ द वैस्टर्न यूरोपियन माइन्ड' (An Outline of History of the Western European Mind) की रचना की। पेजहाट (Pagehot), तार्डे (Tarde) एवं दूर्खीम (Durkheim) आदि भी कूटनीतिक इतिहास के लेखकों में अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। कार्ल बेकर (Carl Becker) की रचनाओं में फ्रांसीसी और अमरीकी राजनीतिक चिन्तन है। जे० एच० रैन्डल (J.H. Randall) की रचनाओं में आधुनिक बौद्धिक इतिहास का विशद वर्णन है। एच०ई०बार्नें (H.E. Barne) ने तीन जिल्दों में 'पश्चिमी दुनिया का बौद्धिक एवं सांस्कृतिक इतिहास" (An Intellectual and Cultural History of the Western World) की रचना की। इन सब विद्वानों की रचनाओं ने बौद्धिक इतिहास लेखन को लोकप्रिय बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

8. विश्व इतिहास (World History)—विश्व इतिहास आधुनिक युग की देन है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रमुखत: वर्णन किया जाता है। पहले के कालों में लेखकों का ध्यान इस दिशा में नहीं गया। परन्तु आधुनिक संचार साधनों एवं तकनीकी विकास ने विश्व को छोटा बना दिया है, जिस कारण इतिहासकारों का ध्यान इस ओर जाने लगा है। अब इतिहासकारों के लेखन में घटनाओं का वर्णन अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में होने लगा है। प्रो० एल्टन ने लिखा है, "समस्त श्रेष्ठ ऐतिहासिक लेखन इस दृष्टि से विश्व इतिहास है कि क्योंकि इसके अंश का अध्ययन करते हुए भी यह सम्पूर्ण का स्मरण करता है।" (All good historical writing is universal history in the sense that it remembers the universal, while dealing with a part of it).

आधुनिक युग में संचार एवं यातायात में जो गति आई है उसने समय एवं दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है तथा सम्पूर्ण विश्व एक घर जैसा बन गया है। अत: इतिहासकार का दृष्टिकोण भी क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है। विश्व इतिहास लिखने की परम्परा प्रारम्भ करने का श्रेय एच०जी०व्हेल्स और उसकी रचना 'इतिहास की रूपरेखा' (Outline of History) को दिया जा सकता है। परन्तु यह पुस्तक अन्य इतिहासकारों को विश्व इतिहास लेखन की ओर प्रेरित न कर सकी। विश्व युद्धों के पश्चात स्थापित राष्ट्र संघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भी विद्वानों को विश्व इतिहास लेखन की प्रेरणा दी। अनेक आधुनिक लेखकों जैसे सीले (Seeley), हेज (Heyes) , बोट्सफोर्ड (Botsford), केलर Keller), फ्लिक (Flick) आदि विद्वानों ने भी विश्व इतिहास की रचना की परन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह हो सकता है कि विश्व इतिहास अपने आपमें काफी व्यापक विषय है और किसी भी इतिहासकार के लिये इसके समस्त पहलू पर दृष्टिपात कर पाना कुछ कठिन था। इसीलिये कुछ विद्वानों ने संयुक्त रूप से विश्व इतिहास लिखने का बीड़ा उठाया। ये विद्वान थे विथेल्म (Withelm), वाल्टर गोट्स Walter Geotz), लुई हैल्फेन (Louis Halphen), हेनरी बैर (Henry Berr) जिन्होंने विश्व

इतिहास पर महत्वपूर्ण रचनायें की। यूनैस्को ने भी इस प्रकार का कार्य करने का प्रयास किया परन्तु इसको सफलता नहीं मिली। हर्डर ने अपने दार्शनिक चिन्तन में विश्व इतिहास को एक नई अवधारणा की। भारत में जवाहरलाल नेहरू ने "विश्व इतिहास की झलक" नामक पुस्तक लिखकर विश्व इतिह लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इतिहास के अध्ययन को अनेक भागों अथवा शाख बांटा गया है। यह सभी शाखायें इतिहास के किसी न किसी स्वरूप अथवा पहलू पर प्रकाश डालती हैं मानव इतिहास की सर्वांगीण जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

● इतिहास में वस्तुनिष्ठता, विषयनिष्ठता एवं पू (Objectivity, Subjectivity & Bias in His

1. **वस्तुनिष्ठता का अर्थ**— वस्तुनिष्ठता का अर्थ है भावुकताहीन तथा वैज्ञानिक विश इतिहासलेखन के सम्बन्ध में वस्तुनिष्ठता का अर्थ है कि जब कभी कोई इतिहासकार ऐतिहासिक तथ विश्लेषण करे तो वह स्वंय को उन घटनाओं से बिल्कुल असम्बद्ध कर ले और जिस प्रकार एक न्या बिल्कुल निष्पक्ष रूप से अपना निर्णय सुनाता है उसी प्रकार इतिहासकार घटनाओं का वर्णन कर दे। इस वस्तुनिष्ठता का अर्थ हुआ बिना व्यक्तिगत पक्षपात अथवा पूर्वाग्रह के ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन। ई वी० गोरोन्सकी ने लिखा है, "किसी भी अध्ययन का मुख्य बिन्दु या तो व्यक्ति अथवा किसी वस्तु पर होता है। चूँकि व्यक्ति का व्यक्तित्व परिवर्तनशील है इसलिये अध्ययन का विषय व्यक्ति होने पर सर्व नियम को प्राप्त करना सम्भव नहीं होता, परन्तु वस्तुओं में समानता का गुण होने के कारण उनके अध सर्वभौमिक नियम पाये जाते हैं। इसीलिये विद्वानों ने व्यक्ति के स्थान पर वस्तु को अध्ययन का विषय ब ओर अधिक ध्यान दिया है।"

डा० झारखंड चौबे के अनुसार वस्तुनिष्ठता इतिहास लेखन की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि जब कोई वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अपने प्रयोगों और विश्लेषण के द्व नियम स्थापित करता है तब उन्हें सभी स्वीकार करते हैं क्योंकि वे निर्णय सार्वभौम एवं सर्वकालिक चूँकि कुछ विद्वान इतिहास को विज्ञान मानते हैं इसलिये उनकी यह मान्यता है कि इतिहास के स्व निष्कर्ष को भी सार्वभौम बनाया जा सकता है। इसलिये यदि इतिहास को पूर्णरूप से विज्ञान स्वीकार व जाये तो उसमें वस्तुनिष्ठता लाना भी अनिवार्य हो जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या मानव प्रकृति को समझते हुए इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता को सम्भव ब सकता है? एक सीमा तक पूर्वाग्रह व्यक्ति की मानसिकता और सोच के साथ जुड़े हुए हैं। इतिहास कार्यकलापों और उपलब्धियों का वर्णन है जिनके सम्बन्ध में एकमत होना सम्भव नहीं है।

● ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें (Problems of Historical Objec

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें अत्यन्त जटिल हैं। वैज्ञानिक इतिहासकारों के द्वारा समस्याओं को हल कर लिया जाता है तो उसके बाद ही ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को मान्यता प्रदान सम्भव हो सकता है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में निम्नलिखित प्रमुख समस्यायें हैं—

निष्पक्षता का अभाव (Lack of Impartiality)—डार्डेल नामक विद्वान का मत है ।क कोई भी चीज स्वंय में वस्तुनिष्ठ नहीं होती वरन् उसमें वस्तुनिष्ठता स्थापित की जाती है। आधुनिक विद्वान बाह्य साधनों के माध्यम से इतिहास को वस्तुनिष्ठ बनाना चाहता है जिस कारण वस्तुनिष्ठता का प्रश्न विद्वानों, दार्शनिकों एवं इतिहासकारों के बीच विवाद का विषय बन गया है। आधुनिक इतिहासकार अपने मत को स्थापित करने के लिये अतीत का वर्णन किसी विशिष्ट रवैय्ये, अवधारणा, व्यक्तिगत ईर्ष्या, पूर्वाग्रह या भ्रांति के साथ करता है जो कभी भी निष्पक्ष नहीं हो सकता। इस प्रकार घटनाओं का पक्षपातपूर्ण वर्णन वस्तुनिष्ठता स्थापित करने के मार्ग में एक महान बाधा है।

सामाजिक वातावरण का प्रभाव (Influence of Social Environment)—मनुष्य संस्कारों से बंधा हुआ एक सामाजिक प्राणी होता है। इतिहास का जन्म और विकास भी समाज और धर्म के संदर्भ में ही होता है और उसपर भी उनका उतना ही प्रभाव होता है। इतिहासकार भी समाज में ही जन्म लेता है, इसलिये उसका भी इन सबसे प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। इसीलिये मार्क्स ने यह कहा है कि अरब, यहूदी, हिन्दू , मुसलमान, रूसी एवं अमरीकी इतिहासकारों के वर्णन में असम्बद्धता है अथवा परस्पर एकरूपता का सर्वथा अभाव है। इसलिये इतिहास को वैज्ञानिक विधा के समर्थकों को वस्तुनिष्ठता ढूढ़ने का प्रयास समाज के बाहर करना चाहिये।

युग-युगीन आवश्यकता (Need of Ages)—मानव की रूचियां, स्वभाव एवं दृष्टिकोण स्थायी नहीं होता तथा काल और परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहता है। इसलिये एक युग का इतिहास दूसरे युग से भिन्न होता है। इसलिये इतिहासिक वस्तुनिष्ठता सिद्ध करना सम्भव नहीं है। एक प्रसिद्ध इतिहासकार की मान्यता है कि समस्त इतिहास समसामायिक होता है, इसलिये मनुष्य को अपने युग के प्रति सचेत रहना चाहिये। केवल तभी वह समाज का सही चित्र प्रस्तुत कर सकता है। एडवर्ड मेयर ने भी लिखा है कि इतिहास लेखन में समसामयिक सामाजिक आवश्यकताओं को वरीयता दी जाती है। गार्डनियर ने भी लिखा है कि एक ही ऐतिहासिक तथ्य विभिन्न कालों में बदलता रहता है क्योंकि मनुष्य की स्वार्थी प्रकृति भी समय, युग एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होती है। जे०ए० रौबिन्स का भी मत है कि इतिहासकार एकत्रित ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं तथ्यों को अपने युग की आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुरूप प्रस्तुत करता है। इन सब विद्वानों के मतों के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक कठिन काम है क्योंकि युग और परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्ति की सोच और मानसिकता में परिवर्तन होता रहा है।

मान्यताओं में परिवर्तन (Change in Beliefs)—जिस प्रकार समय और युग के अनुरूप सोच और मानसिकता में परिवर्तन होता है उसी प्रकार मान्यताओं में भी समय के अनुसार परिवर्तन होता है। भूतकाल में जिन बहुत सारी बातों की समाज में मान्यता थी उनका अब आधुनिक युग में कोई महत्व नहीं रह गया है। उसी प्रकार वर्तमान की ऐतिहासिक प्रामाणिकता भविष्य में निर्रथक हो जाएगी। परन्तु वस्तुनिष्ठता में समय के साथ कोई परिवर्तन नहीं आता है। उदाहरण के लिये गणित में पहले भी दो और दो चार ही थे जो आज भी वैसे के वैसे ही हैं। रसायन शास्त्र में पानी का फार्मूला हमेशा से वही रहा है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठता सार्वभौम एवं सर्वकालिक है। वस्तुत: वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता को किसी भी युग में चुनौती नहीं दी जा सकती जबकि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता न तो सर्वकालिक होती है और न सार्वभौमिक।

व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव (Influence of Personal Feelings)—इतिहासकारों के ग्रन्थ अधिकांशत: उनकी व्यक्तिगत भावनाओं से प्रेरित होते हैं जिसके कारण वे बहुधा ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा कर देते हैं और वस्तुनिष्ठता पूरी तरह समाप्त हो जाती है। बेयर्ड ने लिखा है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार का दृष्टिकोण समान्यत: उसकी व्यक्तिगत भावनाओं, सामाजिक वातावरण एवं आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। ऐसे में उसका ऐतिहासिकता के सिद्धान्तों से भटक जाना स्वाभाविक है।

पूर्वाग्रह की भावना (Feelings of Bias)—इतिहासकारों का पूर्वाग्रहों से ग्रसित होना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिये हम 1857 में हुए विद्रोह को ले सकते हैं। 1857 में एक घटना घटी थी यह तो सभी मानते हैं। अंग्रेज इतिहासकार इसे गदर या सिपाही विद्रोह कहकर पुकारते हैं जबकि भारतीय इतिहासकार इसके राष्ट्रीय चरित्र को दोहराते हुए उसे महान विद्रोह या स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहते हैं। एक और उदाहरण लिया जा सकता है। हाथी को देखकर जब 6 लोगों से उसके स्वरूप का वर्णन करने को कहा गया तो किसी ने बड़े कानों, कुछ ने लम्बे दांत और कुछ ने विशालकाय शरीर के आधार पर उसका वर्णन किया। परन्तु यह वर्णन अंधे व्यक्तियों के द्वारा किया गया था इसलिये यह पूर्णतया वस्तुनिष्ठ था। इतिहासकार की अपनी दृष्टि होती है तथा रूचि एवं रूझान भी, जिस कारण उसके वर्णन में विषयनिष्ठता होना स्वाभाविक है। इसलिये वेबर ने कहा है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता को ढूढंना एक दोष है।

इतिहास का चयनात्मक स्वरूप (Selective Nature of History)—इतिहास की प्रकृति चयनात्मक होती है। इसका अर्थ यह है कि चूंकि इतिहासकार के लिये अतीत का सम्पूर्ण वर्णन करना सम्भव नहीं होता इसलिये वह किसी भी विषय के एक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लेता है। पक्षपात तथा अपने पूर्वाग्रहों में फंसे हाने के कारण बहुधा इतिहासकार एक ही घटना को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए डा० आगा मेंहदी हुसैन खां तथा डा० ईश्वरी प्रसाद ने तुगलक वंश के संस्थापक गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के सम्बन्ध में एक-दूसरे से विरोधी मत व्यक्त किया है। डॉ० आगा मेंहदी हुसैन गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के पीछे प्राकृतिक आपदा को उत्तरदायी मानते हैं तथा जूना खां (मुहम्मद तुगलक) को निर्दोष साबित करने के लिये अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर डा० ईश्वरी प्रसाद सुल्तान की हत्या के लिये जूना खां को उत्तरदायी बताते हैं। इसी प्रकार कुछ विद्वानों का विचार है कि विवाह से पूर्व जहांगीर नूरजहां से मिला भी नहीं था जबकि अन्य इतिहासकार उनके प्रेम प्रसंगो का विस्तृत वर्णन करते हैं। इस प्रकार इतिहासकार अपने मत के समर्थन में तथ्यों का चयन कर देता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में एक बहुत बड़ा रोड़ा होती है।

भावनाओं की प्रधानता (Supremacy of Emotions)—हेनरी पिरेन ने लिखा है कि इतिहासकार वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता क्योंकि वह अपने जैसे हाड़-मांस से बने मानव से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करता है। रांके ने लिखा है कि इतिहास लेखन चेतनता (consciousness) का विषय है, इसलिये उसमें भावनाओं की प्रधानता होना स्वाभाविक है। कितना भी प्रयास क्यों न करें, इतिहासकार अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण नहीं रख पाता क्योंकि मनुष्य का वर्णन करते हुए वह भावुक हो ही जाता है। इतिहासकार गूच ने भी कहा है कि इतिहासकार का व्यक्तित्व उसके लेखन में स्पष्ट झांकता है जिसमें से उसकी भावनाओं की प्रधानता को पृथक करके उसको वस्तुनिष्ठ बनाना सम्भव नहीं होगा। इसीलिये शिलर नामक विद्वान की मान्यता है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या है।

धर्म एवं जाति की कठिनाई (Problems of Religion and Caste)—इतिहासकार भी एक व्यक्ति होता है जिसका अपना एक धर्म और जाति होती है। एक इतिहासकार के लिये बचपन से अपने ऊपर पड़े धर्म एवं जाति के प्रभावों से मुक्त हो पाना कदापि सम्भव नहीं होता। यह बात प्रत्येक युग के इतिहास लेखन में देखा जा सकती है। हिन्दू राजाओं ने मुसलमान राजाओं की नीतियों एवं अत्याचारों की कटु आलोचना की है जबकि मुसलमान इतिहासकारों ने उनके कार्य-कलापों के पीछे हर सम्भव औचित्य ढूंढने का प्रयास किया है, इसलिये मध्यकालीन इतिहास की विभिन्न घटनाओं में हिन्दू और मुसलमान इतिहासकारों के वर्णन में अत्यधिक विरोध दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार के विरोधाभासी वर्णन रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट तथा अरब एवं यहूदी इतिहासकारों के वर्णनों में भी जगह-जगह पर देखे जा सकते हैं।

अन्य समस्यायें (Other Problems)—उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य और भी बहुत से कारण हैं जो इतिहासकार की वस्तुनिष्ठता के मार्ग में बाधक हैं। इतिहासकार एक न्यायाधीश नहीं होता जो केवल तथ्यों के आधार पर ही अपना निर्णय दे। वह एक वैचारिक प्राणी होता है जिस पर सामाजिक परिवेश तथा बदलते हुए मूल्यों, परिस्थितियों एवं वातावरण का प्रभाव पड़ता है। इस सबसे अपने आपको मुक्त करके एक व्यक्ति के लिये एक वस्तुनिष्ठ इतिहासकार बन पाना कदापि सम्भव नहीं हो पाता। वह किसी धार्मिक सम्मेलन में जाता है, किसी राजनीतिक विचारधारा एवं दल से जुड़ा होता है और जीवन-यापन के लिये कोई व्यवसाय अपनाता है। इन सबका उसके ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अत: इतिहासकार से पूरी तरह वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा करना न तो उचित है और न व्यावहारिक।

वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता (Need for Objectivity)—वर्तमान युग में विद्वानों ने इतिहास को एक विज्ञान माना है, इसलिये ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता पर विशेष बल दिया जा रहा है। यदि इतिहासकार वस्तुनिष्ठता पर ध्यान नहीं देगा तो वह या तो तथ्यों को तोड़ना, मरोड़ना शुरू कर देगा या कल्पना की उड़ान लेने लगेगा। **जी०आर० इल्टन** ने लिखा है, "इतिहासकार की कृति का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह अतीत के दस्तावेजों की स्वतन्त्र तर्कपरक और निष्पक्ष जांच पर आधारित होना चाहिए।" एक अन्य विद्वान का भी यह मत है कि तथ्य पवित्र होते हैं, मत स्वतन्त्र होते हैं। यह मानते हुए भी कि किसी भी ऐतिहासिक कृति में संम्पूर्ण वस्तुनिष्ठता असम्भव है, परन्तु फिर भी इतिहासकार को साक्ष्यों का परीक्षण वस्तुनिष्ठ होकर करना चाहिये।

2. यह सही है कि इतिहासकार सामाजिक प्राणी होता है और इतिहास में पूर्ण वस्तुनिष्ठता नहीं हो सकती परन्तु फिर भी विद्वानों ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता पर बल दिया है और किस प्रकार इतिहास को वस्तुनिष्ठ बनाया जाये इस समस्या का समाधान किया है। **बटरफील्ड** नामक विद्वान का सुझाव है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता से पहले सामान्य इतिहास और शोध इतिहास के बीच के अन्तर को जान लेना आवश्यक है। सामान्य इतिहास संक्षिप्त होता है इसलिये वस्तुनिष्ठ हो सकता है, परन्तु शोध इतिहास विस्तृत होता है जिस कारण उसमें वस्तुनिष्ठता नहीं पायी जाती है। सामान्य इतिहास में इतिहासकार अपनी व्यक्तिगत भावना का प्रयोग नहीं कर सकता जबकि शोध इतिहास में लेखक तथ्य का चयन स्वयं करता है उसमें अपनी व्यक्तिगत रुचि और भावना के अनुकूल व्याख्या करने में सक्षम होता है।

3. डेवी ने लिखा है, "बौद्धिक वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य व्यक्तिगत तत्वों को इतिहास से पृथक करना है इतिहास में हम यदि व्यक्ति के स्थान पर तथ्यों को प्रमुखता प्रदान करें तो हम ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की र कर सकते हैं। जैसा **वाल्श** का भी मानना है कि यर्थात तथ्यों का वर्णन ही वस्तुनिष्ठता है।

4. अनेक विद्वानों ने इतिहास को 'महान व्यक्तियों की आत्मकथा' कहकर पुकारा है क्योंकि ऐतिहासि घटनायें सामान्यत: महापुरूषों के जीवन से ही सम्बन्धित होती हैं इसीलिये इतिहासकार को न तो उस अत्यधिक प्रशंसा करनी चाहिये और न ही निन्दा। इस प्रकार महापुरूषों की उपलब्धियों का सही वर्णन क इतिहासकार वस्तुनिष्ठता को स्थापित कर सकता है। इसलिये अधिकांश विद्वानों ने यह माना है कि वस्तुनि इतिहास का आधार मानव स्वभाव का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है। **पी० गार्डनर** ने लिखा है कि इतिहासक को वस्तुनिष्ठता को त्यागकर अपनी रूचि के अनुसार वर्णन नहीं करना चाहिये। कुछ विद्वानों ने तो इतिहासकारों को निन्दा का पात्र बताया है जो तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करते हैं।

5. कुछ विद्वानों का विचार है कि इतिहाासकार यदि नियमों का पालन करते हुए इतिहास लेखन करत तो वह अपने लेखन को वस्तुनिष्ठ बना सकता है। जैसा कि वाल्श ने लिखा भी है कि इतिहासकार अनुशासन और नियमों का पालन करना चाहिये। यदि वह आवश्यक नियमों की अवहेलना करता है तो इतिह के स्वरूप को दूषित करने का दोषी ठहराया जा सकता है।

6. विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि मानव के ऊपर धर्म का अत्यधिक प्रभाव होता है जो उस विचारधारा एवं कार्यकलापों को बहुत हद तक प्रभावित करता है। परन्तु इतिहासकार को अपने दायित्व समझते हुए समाज का उचित प्रतिनिधित्व करना चाहिये न कि विशिष्ट धार्मिक वर्ग अथवा समुदाय का इतिहासकार से यह भी अपेक्षा करते हैं कि वह धार्मिक प्रभावों में न फंसे।

7. कुछ विद्वानों का विचार है कि इतिहासलेखन में वस्तुनिष्ठता का समाधान आसानी से हो सकत यदि इतिहासकार एक कलाकार या फोटोग्राफर की तरह तस्वीर को हू बहू-उसी रूप में प्रस्तुत करे, जिसमें दिखाई पड़ती है।

वस्तुनिष्ठता की समीक्षा (Analysis of Objectivity)—इतिहास लेखन में वस्तुनि अत्यधिक आवश्यक है, परन्तु इतिहासकार के लिये पूरी तरह वस्तुनिष्ठता को बनाये रखना बहुत कठिन विज्ञान में जिस प्रकार समस्त नियम सार्वभौम और सर्वकालिक होते हैं उस प्रकार की वस्तुनिष्ठता की इति में कल्पना करना एक मृग-मरीचिका के समान है। इतिहासकार सामाजिक प्राणी होता है जिसके अपने विचार, सिद्धान्त, मनोवृत्ति और भावनायें होती हैं जिनकी वह कितनी भी अवहेलना क्यों न करे, उसके ले पर वे अनायास ही झलकने लगती हैं। वाल्श के विचार में एक इतिहासकार के लिये अपनी रचना में व्यक्तिगत पूर्वाग्रह को निकाल पाना उतना ही असम्भव है जितना स्वंय को अपनी त्वचा से अलग करना। में हम **डा० झारखंड चौबे** के मत से सहमत होते हुए कह सकते हैं कि इतिहास रचना लेखक के व्यक्ति को प्रतिबिम्बित करती है। इतिहासकार अपने ग्रन्थ को व्यक्तिगत प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास करते हु ठोस तथ्यों को नकार नहीं सकता। वास्तव में इतिहास में तथ्यों का अत्याधिक महत्व है और उनकी प्रध बनाये रखने से इतिहास की वस्तुनिष्ठता को सुरक्षित रखता जा सकता है।

ऐतिहासिक विषयनिष्ठता (Historical Subjectivity)—उपर्युक्त विचार-विमर्श के बाद यह स्पष्ट हो गया कि इतिहास वस्तुनिष्ठ हो अथवा विषयनिष्ठ, यह एक जटिल प्रश्न है। प्राचीन और मध्यकाल में अधिकांश इतिहास राजदरबार में लिखा गया जिनके लेखक राज्याश्रित लेखक एवं विद्वान थे। किसी भी विवरण में उनकी दृष्टि और सोच अपने संरक्षक और स्वामी के अधिकाधिक गुणगान पर ही केन्द्रित रहती थी। उनका लेखन विषयनिष्ठता से भरपूर तो होता ही था उसमें पक्षपात और अतिशयोक्ति भी स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। दूसरी आरे वे विद्वान थे जो स्वतन्त्र रूप से लेखन करते थे तथा उनका वर्णन उसी व्यक्ति के लिये, जिसकी अत्यधिक प्रशंसा राज्याश्रित लेखक ने की थी, बिल्कुल भिन्न होता था। उदाहरण के लिये अबुल फजल एवं बदायूँनी के द्वारा अकबर के विषय में किये गये वर्णन को ही लें। अबुल फजल के वृत्तान्त को पढ़कर पाठक के मस्तिष्क में एक छवि बनती है जबकि बदांयूनी को पढ़कर अकबर का एक बिल्कुल भिन्न रूप हमारे समक्ष आता है। डेविड थॉमसन ने लिखा है,"इतिहास न तो पूर्णरूप से विषयनिष्ठ है और न ही उसमे पूर्णत: वस्तुनिष्ठता पाई जाती है। इतिहासकार एक सामाजिक प्राणी है। उस पर अपने देश, जलवायु और वातावरण का प्रभाव होता है। धर्म एवं जाति के बन्धन भी उसे अपने में जकड़े रहते हैं। वह चाहते हुए भी उनसे मुक्त नहीं हो पाता। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न इतिहासकारों ने पृथक-पृथक ढ़ंग से समाज के चित्र और मानव की उपलब्धियों का आकलन किया है जो इतिहास की वस्तुनिष्ठता को, नकारते हुए उसे विषयनिष्ठता के समीप लाता है।"

कुछ विद्वानों का विचार है कि इतिहासकार का व्यक्तित्व भी साहित्यकार के समान उसके द्वारा लिखे ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से झांकता है। उसकी आन्तरिक चेतना, सामाजिक सम्बन्ध, उसकी परवरिश, व्यक्तिगत रूचि एवं भावना आदि उसके वर्णन में दिखाई पड़ते हैं जो पूरी तरह से विषयपरक कहा जा सकता है। वस्तुनिष्ठता के नाम पर उसे छिपाने का प्रयास करना एक विवेकहीन, असंगत और मूर्खतापूर्ण प्रयास होगा। मैडल बार्न का मत है कि इतिहासकार परिस्थितियों की उपज होता है। समय लेखक को और लेखक तत्कालीन समाज को प्रभावित करता है। अत: विषयपरकता इतिहास का एक सामान्य लक्षण है।

जे० एम० ट्रेवेलियन ने लिखा है कि इतिहास मे द्वेष और सहानुभूति का पाया जाना आवश्यक और स्वाभाविक है। इतिहासकार विषय का चयन अपनी रूचि एवं इच्छा के आधार पर करता है तथा अपनी रूचि के अनुसार समाज के परिप्रेक्ष्य में अतीत के व्यक्तियों, कार्यों और उपलब्धियों का वर्णन करता है। भले ही वह घटनाओं का वर्णन पक्षपातरहित होकर करे परन्तु निष्कर्ष उसके अपने ही होते हैं। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण है 1857 की घटना जिसका वर्णन अंग्रेजी और भारतीय इतिहासकारों ने अपने-अपने तरीके से किया है जो विषयनिष्ठता का स्पष्ट प्रमाण है।

बी० शेख अली ने लिखा है कि एक इतिहासकार कुछ सीमाओं के भीतर रहकर कार्य करता है। जब वह अतीत का वर्णन करता है तो उसे सारी सामग्री उपलब्ध नहीं होती। दूसरी बात जिन्होंने उन सिद्धान्तों को लिखा है या तो उन्होंने भी बिना देखे लिखा है या जान-बूझकर कुछ बातों को छिपाया है। ऐसे में इतिहासकार के लिये किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये अपनी बुद्धि और सोच का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है और उसी से उस वर्णन में वस्तुनिष्ठता आ जाती है। उनके अनुसार एक इतिहासकार और वैज्ञानिक में बहुत अंतर होता है। वैज्ञानिक के पास एक प्रयोगशाला होती है जबकि अपनी विविध जिज्ञासाओं की संतुष्टि के लिये इतिहासकार पुस्तकालय पर निर्भर करता है। अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर इतिहासकार जो निष्कर्ष निकालता

है वह विषयपरक और लचीले होते हैं। इसीलिये अलग-अलग इतिहासकारों के निर्णय परस्पर विरोधी होते हैं उन्होंने इतिहासकारों को एक सुझाव दिया है कि उन्हें वस्तुनिष्ठ रहने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिये। एक इतिहासकार को अधिक निष्ठा के साथ पूर्ण सत्य को प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिये। उसके वर्णन में विषयपरकता आना तब स्वाभाविक हो जाता है जब वह सीमित स्रोतों के आधार पर वर्णन करता है। इतिहास लेखन में साहित्य की तरह अलंकारिक भाषा और शब्दावली का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये। संक्षेप में यदि इतिहास को सही मायनों में अतीत का दर्पण बनना है तो इतिहासकार को जितना भी सम्भव हो सके वस्तुनिष्ठ होनें का प्रयास करना चाहिये। उनका यह भी मत है कि पूर्ण वस्तुनिष्ठता सम्भव नहीं है और कुछ अनुपात में विषयपरकता न केवल अवश्यम्भावी है वरन् वांछनीय भी है। परन्तु उनका विचार है कि यह अनुपात एवं व्यंजन में नमक के अनुपात में ही होना चाहिये। कोई अन्य अनुपात कम या अधिक, भोजन का स्वाद बिगाड़ देगा। इसलिये जहाँ तक भी सम्भव हो इतिहासकार को वस्तुनिष्ठ होने का प्रयास करना चाहिये।

इतिहास में पूर्वाग्रह (Bias in History)—वस्तुनिष्ठता और विषयनिष्ठता से ही मिलता-जुलता प्रश्न है इतिहास में पूर्वाग्रह का। हमने अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है तो यह माना है कि इतिहासकार एक सामाजिक प्राणी होता है जिस पर उस युग की स्पष्ट छाप होती है जो उसके लेखन में भी झलकती है। उसके अपने निश्चित विचार और सिद्धान्त होते हैं, भावनायें होती हैं, धर्म और जाति होती है, वह किसी निश्चित राजनीतिक विचारधारा का समर्थक या किसी राजनीतिक दल का सदस्य होता है। इन सब बातों का न चाहते हुए भी उसके लेखन में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इतिहासकार उन 6 अंधे व्यक्तियों की तरह तो नहीं होता जो केवल छूकर और बिना देखे हुए हाथी के विभिन्न अंगो के आधार पर पूरे के पूरे हाथी के सम्बन्ध में अपना राय देते हैं। वह तो हाड़-मांस का एक ऐसा जीव होता है जिसकी अपनी दृष्टि भी होती है और दृष्टिकोण भी इसलिये उससे यह अपेक्षा करना कि उसकी सोच या पूर्वाग्रह उसके लेखन में नहीं आयेंगे, यह उचित नहीं है इतिहास अतीत का विवरण होता है जिस कारण वह अपरिवर्तनीय है। परन्तु इतिहास स्वंय अतीत न होकर अतीत की घटनाओं का लेखा या विवरण होता है। इसका विवरण प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति अपने विचारों तथा पूर्वाग्रहों का रंग अपने विवरणों पर चढ़ाये बिना नहीं रह सकता। इतिहास की विभिन्न घटनाओं के उदाहरण हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है। चाहे वह संत आगस्टीन हो या वाल्टेयर, हीगल, स्पैन्गलर, टायनबी या अन्य कोइ विचारक, इनमें से कोई भी पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं था। वी०डी० सावरकर के लेखन में अंग्रेजों के प्रति द्वेष स्पष्ट झांकता है और वही बात मिल में दिखाई पड़ती है जब वह भारतीयों के विषय में लिखता है। इसी प्रकार गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के विषय में डॉ० ईश्वरीप्रसाद के विचार बिल्कुल भिन्न हैं तथा डॉ० आगा मेंहदी हुसैन खां के बिल्कुल भिन्न। यह दोनों विद्वानों का पूर्वाग्रह ही था जो एक तो मुहम्मद तुगलक को पितृ-हत्या का दोषी सिद्ध करने पर आमादा था और दूसरा उसको इस आरोप से मुक्त करने के लिये सम्भव तर्क प्रस्तुत कर रहा था। इसी प्रकार 1857 की घटना को लगभग प्रत्येक भारतीय इतिहासकार भारतीय इतिहास के एक गौरवमय अध्याय तथा प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है जबकि अधिकांश ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसे मात्र सिपाही विद्रोह कहकर पुकारा है। इस प्रकार किसी भी युग का और किसी भी इतिहासकार का लेखन पूर्वाग्रहों से भी पूरी तरह मुक्त नहीं रहा। एक आधुनिक विद्वान ने लिखा है कि एक इतिहासकार का पूर्वाग्रह या पक्षपात उसी समय प्रारम्भ हो जाता है जब वह अपनी रूचि के अनुसार विषय का चयन करता है। विषय के चयन के साथ वह तथ्यों का चयन भी अप

रूचि के अनुसार करता है और उसके अनुसार ही वह अपनी रचना को स्वरूप प्रदान करता है। यह बात हर युग के इतिहासकार पर लागू होती है, किसी पर कम और किसी पर ज्यादा। अत: पूर्वाग्रह-मुक्त इतिहास या इतिहासकार की कल्पना करना व्यावहारिक नहीं है। इतिहास को विज्ञान तो माना जा सकता है लेकिन रसायन एवं भौतिक शास्त्र की तरह नहीं वरन् एवं सामाजिक विज्ञान की तरह। इसीलिये इतिहासकार एक सामाजिक वैज्ञानिक की तरह सामाजिक कृतियों और विकृतियों को अपनी दृष्टि से देखता है, इसलिये इतिहास में पूर्वाग्रह की हमेशा सम्भावना बनी रहती है।

● इतिहास में कार्य-कारण (Causation in History)

प्रस्तावना (Introduction)—इतिहास में नियतिवाद है। सरल शब्दों में इसका अर्थ है कि समान परिस्थितियों में समान घटनायें घटित होती हैं। कोई भी घटना अकारण नहीं होती वरन् उसके एक या अनेक कारण होते हैं। प्रारम्भ में इतिहासकार घटना के कारणों को महत्व नहीं देते थे क्योंकि वे इसे ईश्वर की इच्छा में हस्तक्षेप मानते थे। उनका ध्यान घटनाक्रम पर रहता था। उदाहरणार्थ युद्धों के सम्बन्ध में वो सिर्फ इसी पर विचार करते थे कि युद्ध कब और कहां हुआ, उसमें सेना कितनी थी अथवा कितने लोग मारे गये। आधुनिक युग में इतिहासकार का दृष्टिकोण मूल्य आलकन पर आधारित हो गया है तथा यह माना जाता है कि किसी भी घटना के कारणों को बतलाया जा सकता है क्योंकि यह भविष्य की कार्यवाही के लिये भी उपयोगी मार्गदर्शक हो सकता है। किन्तु कभी-कभी ये कारण इतने विविध और जटिल होते हैं कि उनका ठीक प्रकार से विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

कारण की उत्पत्ति (Origin of Causes)—कारण शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'कौसा' (Causa) से हुई है जिसका अर्थ होता है दो घटनाओं के बीच संयोजित सम्बन्ध (A relation of connectedness between events)। **प्रो० गुस्तावसन** (Gustavson) के शब्दों में,"कारण एक अलंकरण वाक्य है जो किसी ऐतिहासिक घटना की व्याख्या में अनेक कारणों को बतलाता है। घटना के कारण दो हो सकते हैं—साधारण अथवा जटिल एवं मूलभूत अथवा तात्कालिक। साधारण कारण को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है जबकि जटिल कारण पूछताछ और धैर्य से ही समझा जा सकता है। मौलिक कारण दूरवर्ती होते हैं जिनमें किसी घटना के बीज छिपे रहते हैं जबकि तत्कालिक कारण वह कारण होता है जिससे वह घटना प्रारम्भ होती है।" उदाहरण के लिये 1857 के विद्रोह के मौलिक कारण थे ब्रिटिश सरकार की नीतियों से भारतीय राजाओं तथा जनसामान्य में असंतोष, परन्तु तत्कालिक कारण था चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग। इसी प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के मौलिक कारण थे गुप्त संधियाँ तथा यूरोप का दो सशस्त्र विरोधी गुटों में बंट जाना, साम्राज्यवाद, अस्त्र-शस्त्रों की होड़ एवं उग्र राष्ट्रीयता आदि, परन्तु इसका तात्कालिक कारण था आस्ट्रिया के राजकुमार फर्डिनेन्ड फ्रांसिस की हत्या। तत्कालिक कारण की गोट्स चौक (Gotts Chalk) ने बारूद के ढेर पर दियासलाई की तीली फेंकना बतलाया है। जिस प्रकार बारूद इकट्ठा हो और उसको जलाने का काम पेट्रोल कर दे उसी प्रकार का सम्बन्ध मौलिक और तात्कालिक कारणों के बीच है।

इतिहासकारों का ध्यान तात्कालिक कारण पर विशेष रूप से होता है तथा वे तात्कालिक कारण से तो सहमत होते हैं परन्तु छिपे कारणों पर अनेक मत अलग-अलग होते हैं। परन्तु तात्कालिक कारण का अध्ययन मात्र ही घटना के कारणों को जानने के लिये पर्याप्त नहीं है, वरन् दूरवर्ती कारणों की खोज और व्याख्या भी

आवश्यक है। चेंशी (Cheynsy) के शब्दों में, "वास्तविक कारण हम समझ नहीं पाते, जबकि प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण होता है।" प्रो० गुस्तावसन ने इसको समझाते हुए लिखा है, "इतिहास के दूरवर्ती कारण विशेष परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जो सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिणाम को सम्भव बनाती है।"

कारण की अवधारणा (Concept of Cause)—कारण की अवधारणा के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में परस्पर मतभेद है। अरस्तू के अनुसार कारणों के अभाव में किसी घटना अथवा कार्य का होना सम्भव नहीं है। **ई०एच० कार** के शब्दों में, "अतीत की घटनाओं को क्रमबद्धता प्रदान करना तथा कारण एवं परिणाम के परस्पर सम्बन्ध को क्रमानुसार वर्णित करना ही इतिहास है।" **रेनियर** के अनुसार किसी भी घटना के एक नहीं अपितु अनेक कारण होते हैं। **कॉलिन्गवुड** के इस विचार कि 'इतिहास अतीत के मानवीय कार्यों का अध्ययन है" से सब विद्वान सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि अनेक घटनाओं में मानवीय कारण नहीं वरन् प्राकृतिक कारण प्रमुख होते हैं। उन्होंने अपने विचार के पक्ष में कई उदाहरण दिये हैं, जैसे रूस में नैपोलियन की पराजय का प्रमुख कारण भीषण ठंड था अथवा मुहम्मद तुगलक की दोआब में कर वृद्धि की योजना की असफलता में अकाल की मुख्य भूमिका रही।

कुछ विद्वानों ने कारणों पर अधिक बल दिया है जबकि कुछ ने प्रभाव पर। इतिहासकार वाल्श ने कारणों के महत्व के साथ-साथ उनकी क्रमबद्धता पर बल दिया है। रेने नामक विद्वान ने भी कुछ इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है और इतिहासकार की तुलना एक बुनकर से की है जो बिखरे हुए सूत्रों को सूक्ष्म दृष्टि से एकत्रित करके उन्हें कपड़े के रूप में प्रस्तुत करता है। **डेविड थॉमसन** ने कारणों एवं उसके प्रभावों पर विशेष बल दिया है, परन्तु कुछ अन्य विद्वान प्रभावों की अपेक्षा कारणों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि उनका विचार है कि कारणों के अभाव में परिणाम की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती।

कार्य-कारण सम्बन्ध (Causation)—इतिहास में कार्य-कारण के बीच अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि कारण के अभाव में किसी भी घटना का होना सम्भव नहीं है इसलिये किसी भी घटना के सम्बन्ध को समझने के लिये कार्य-कारण के सम्बन्धों की विवेचना अत्यधिक आवश्यक है। यद्यपि कार्य-कारण सम्बन्ध के विषय में विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं परन्तु इस तथ्य को सभी ने एक मत से स्वीकार किया है कि किसी भी कार्य में कारणों का होना आवश्यक है।

एक विद्वान ने लिखा है कि सार्वभौम नियम के अनुसार प्रत्येक घटना के कुछ कारण अवश्य होते हैं जो विशिष्ट परिस्थितियों की देन होते हैं। **एडवर्ड मेयर** के अनुसार इतिहासकार को अपने लेखन में घटनाओं को प्रभावित करने वाले कारणों की व्याख्या करनी चाहिये तथा यह भी आवश्यक है कि वह व्याख्या उद्देश्यपरक एवं मूल्यपरक हो। वाल्श, गिब्बन और कॉर्ल मार्क्स भी मूल्यपरक व्याख्या पर बल देते हैं तथा मोनेको नामक विद्वान तो मूल्यों के सन्दर्भ के बिना इतिहास में कार्य-कारण सम्बन्धों की गवेषणा को सम्भव ही नहीं मानता।

विद्वानों ने कारण एवं परिस्थितियों में भेद किया है तथा मुख्य घटना को 'कारण' तथा अन्य को 'परिस्थिति' की संज्ञा दी है। इसीलिये **आकशाट** ने लिखा है कि परिस्थितियों की व्याख्या में ही कारण के स्पष्ट प्रभाव को ढूंढा जा सकता है। विद्वानों ने प्रथम विश्व युद्ध में राजकुमार फर्डिनेन्ड की हत्या को कारण माना है तथ यूरोप के दो सशक्त गुटों में विभाजन, सम्राज्यवाद, उग्र राष्ट्रवाद आदि को परिस्थितियों की श्रेणी में रक्खा है। कारण एवं परिणाम एक-दूसरे के पूरक होते हैं, जैसा कि विलियम जेम्स ने लिखा है कि

इतिहासकार निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए कारण और परिणाम की खोज करता है। उदाहरणार्थ मानसून कारण है और अत्यधिक वर्षा उसका परिणाम अथवा अत्यधिक शीत कारण है जिसके परिणामस्वरूप हिमपात होता है।

एक विद्वान ने लिखा है कि इतिहास का एक उद्देश्य अतीत को भविष्य की धरोहर बनाना भी है। इसी विचार के समर्थन में ई० एच० कार ने भी लिखा है, "इतिहासकार की आस्थाओं में भविष्य समाहित रहता है।" वर्तमान को विद्वानों ने अतीत और भविष्य के बीच की काल्पनिक रेखा की संज्ञा दी है। इतिहासकार डेवी ने इसी मत को व्यक्त करते हुए कहा है कि अतीत के अध्ययन का श्रेय वर्तमान को सुखी और वैभवपूर्ण बनाना है। एक आधुनिक विद्वान के शब्दों में, "वस्तुत: इतिहासकार कारणों की व्याख्या के समय अतीत, वर्तमान और भविष्य के प्रति समान दृष्टिकोण रखता है और उसके द्वारा दी गई व्याख्या में निहित भविष्य कार्य-कारण की सर्वोत्तम परिकल्पना है जिसके आधार पर इतिहासकार कारणों को क्रमबद्ध करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।"

कार्य-कारण के सिद्धान्त (Theories of Causation)—विभिन्न देशों के विद्वानों के द्वारा अलग-अलग समस्याओं पर कार्य-कारण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते रहे हैं, जिनमे से सभी किसी न किसी कारण से तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. दैवीय सिद्धान्त (Divine Theory)—इस सिद्धान्त के समर्थकों की यह मान्यता है कि इतिहास में भाग्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है अथवा भाग्य ही इतिहास का निर्माण करता है। इस सिद्धान्त के समर्थक विद्वान इतिहास के निर्माण में समाज के नायकों एवं राजाओं के महत्व को स्वीकार करते हैं, कारणों की व्याख्या नहीं कर पाते उन्हें ईश्वर की इच्छा कह देते हैं। समस्त धर्मों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है तथा मिस्र, बेबीलोन और यूनान के इतिहासकारों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। इतिहासकार प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण मानते हैं और अपने-अपने ढंग से उस कारण का वर्णन करते हैं। परन्तु जब वे किसी घटना से सम्बन्धित निश्चित कारण नहीं ढूंढ़ पाते है तो उसे ईश्वरीय घटना मान लेते हैं। इस प्रकार इस मत के समर्थक मानवीय कार्यों में ईश्वर के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप को स्वीकार करते हैं।

इस सिद्धान्त की मान्यता और लोकप्रियता के कुछ कारण थे। पहला कारण था प्राचीन एवं मध्यकाल में समस्त विश्व में धर्म की मान्यता और पुरोहित वर्ग का वर्चस्व। चर्च का व्यक्ति के जीवन पर नियन्त्रण था और वे निरन्तर ईश्वरीय शक्ति में विश्वास की पुष्टि करते रहते थे। यह विश्वास अन्धविश्वास की सीमा तक था जिसका प्रमुख कारण था तत्कालीन समाज में अशिक्षा और अज्ञान। परन्तु धीरे-धीरे घटनाओं के पीछे दैवीय विधान की अपेक्षा मानव की भूमिका पर विशेष दिया जाने लगा। इसके साथ ही यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप इतिहास का दृष्टिकोण धर्म-निरपेक्ष हो गया। वर्तमान समय में इस सिद्धान्त की मान्यता समाप्त हो गई है और यह माना जाने लगा है कि प्रत्येक घटना होने पर व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

2. बुद्धिवादी सिद्धान्त (Intellectual Theory)—जनसामान्य में धीरे-धीरे जागृति आने के परिणामस्वरूप मानव के विकास में ईश्वर की भूमिका के सिद्धान्त से असहमति होनी शुरू हो गई। परिणास्वरूप 17 वीं शताब्दी में बुद्धिवाद का प्रादुर्भाव हुआ तथा अनेक विद्वानों, चिन्तकों एवं इतिहासकारों ने घटनाओं के घटित होने में दैवीय योजना का बहिष्कार किया। उन्होंने मानव की ओर अपना ध्यान आकर्षित

किया तथा उसकी भूमिका पर विशेष बल दिया। फ्रांस के दार्शनिकों ने कहा कि जानकारी और तर्क की विज के फलस्वरूप इतिहास मानवीय सम्पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। प्रसिद्ध विचारक लॉक ने भी कहा, "प्राकृतिव समाज की सबसे बड़ी विशेषता मनुष्यों का पारस्परिक प्रेम है, नागरिक संस्थाओं का जन्म मानव के अधिका और स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिये हुआ है।" इसीलिये घटनाओं के घटित होने में ईश्वरीय इच्छा को नकार हुए इतिहासकारों ने घटनाओं के वर्णन में बुद्धिवादी तरीके को अपनाना आरम्भ किया।

3. राष्ट्रीय सिद्धान्त (National Theory)—19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ राष्ट्रवाद वा भावना प्रबल हुई। यह माना जाने लगा कि समय-समय पर जो युद्ध एवं संघर्ष होते रहे हैं उनके पीछे मू कारण राष्ट्रवाद की भावना ही थी। राष्ट्रवाद की भावना राष्ट्रों के मध्य प्राचीन एवं मध्यकाल में भी विद्यमान थ जिसके कारण वे निरन्तर अपनी सीमा के विस्तार हेतु संघर्ष करते रहते थे। परन्तु 19 वीं शताब्दी में राष्ट्रवाद एक ठोस आधार ग्रहण कर लिया। जर्मनी के हर्डर और फ्रांस के मिशिलेट आदि विद्वानों ने इस सिद्धान्त व प्रतिपादन किया कि राष्ट्रीय चरित्र एवं संस्थायें व्यक्ति के चरित्र और भाग्य का निर्धारण करते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने पर इन तथ्यों की महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता मिली।

4. मनोभाव का सिद्धान्त (Emotion Theory)—हीगल, कॉमटे एवं साइमन आदि विचारकों इस विचार का प्रतिपादन किया कि इतिहास के निर्माण में मानवीय मनोभावों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विद्वान मानव भावनाओं को प्रेरित करने वाली शक्ति मानते हैं। प्रत्येक युग में ऐतिहासिक घटनाओं के घटि होने पर मानव मनोभावों का योगदान रहा है। यह देखा गया है कि प्रारम्भिक समय में भी महान व्यक्तियों जनसाधारण को भावनात्मक रूप से उत्तेजित करके उन्हें ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित किया था जिससे घट क्रम उनकी इच्छानुसार घटित हो। मध्य युग में बाबर का उदाहरण उपयुक्त होगा जब उसने खनवा के युद्ध पहले अपने सैनिकों को युद्ध के लिये प्रेरित करने के उद्देश्य से एक भावनात्मक अपील की थी। वर्तमान सम्म में भी राजनीतिक एवं धार्मिक नेता समय-समय पर राजनैतिक उद्देश्य से मानव मनोभावों का इस्तेमाल करते हैं इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब मानव मनोभावों ने विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

5. मार्क्सवादी सिद्धान्त (Marxian Theory)—माल्थस और उसके कुछ साथियों ने ए भौतिकवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा आर्थिक क्षेत्र में अस्तित्व का सिद्धान्त बताया। परन्तु उस सिद्धा को जिसने स्थापित किया वह था कार्ल मार्क्स। उसने ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने की भौतिकवा व्याख्या को इस रूप में प्रस्तुत किया कि उसके सिद्धान्त का सम्पूर्ण विश्व पर प्रभाव पड़ा। उसने कहा f वर्तमान संघर्ष केवल वर्ग संघर्ष है क्योंकि उत्पादनों के साधन पर एक वर्ग का नियन्त्रण और आधिपत्य हो है। यह वर्ग शक्तिशाली लोगों का होता है और सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों पर नियन्त्रण कारण यह वर्ग समाज के अन्य सभी वर्गों पर शासन करता है। मार्क्स का यह भी मानना था कि इस वर्ग–संघ का अंत केवल श्रमिक वर्ग की विजय के द्वारा ही हो सकता है। इसीलिये वह इस वर्ग को संगठित होने व प्रेरणा देता है।

6. वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theory)—19 वीं शताब्दी में एक नवीन सिद्धान्त व उदय हुआ जिसने इस बात पर बल दिया कि इतिहास का वर्णन बिना कार्य-कारण सम्बन्ध के भी किया

सकता है। रांके के नेतृत्व में उदय हुए इस सिद्धान्त के समर्थक विद्वानों का यह मत था कि इतिहास का सर्वोत्तम दर्शन सम्भवत: कारणों के सिद्धान्त पर आधारित न होकर घटना और परिणाम पर केन्द्रित है। परन्तु इस सिद्धान्त में कमी यह रह गई कि इन विद्वानों ने यह स्पष्ट नहीं किया कि कोई व्यक्ति किस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं के समूह में से सत्य को समझ कर उसका अनुसरण कर सकता है।

7. ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical Theory)—19 वीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी में एक नवीन विचारधारा का जन्म हुआ। यह विचारधारा थी ऐतिहासिक विचारधारा जिसके प्रमुख प्रणेता विल्हैल्म डिल्थी (Wilhelm Dilthy) की मान्यता थी कि इतिहास एक निरन्तर प्रक्रिया है जो सदैव जारी रहती है। वे इतिहासकार का एक दायित्व मानते थे कि वह घटनाओं का पता लगाये जो विश्व के विभिन्न भागों में घटित हो रही हैं। इस पद्धति के समर्थक विद्वान इतिहासकारों यह कहना था कि इतिहासकार को अपने दृष्टिकोण के अनुसार घटनाओं की व्याख्या करना चाहिए जिससे वह लोगों का उचित मार्गदर्शन कर सके। इसके साथ उसे घटना के कारणों को भी खोजना चाहिये तथा उन्हें अपने समकालीन लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिये। इस पद्धति के प्रतिपादकों ने मूल्य आकलन (Value Judgement) के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया।

8. बहुलवादी सिद्धान्त (Pluralistic Theory)—बहुलवादी सम्प्रदाय के इतिहासकारों ने इस विचार को अस्वीकार कर दिया कि इतिहास केवल महत्वपूर्ण घटनाओं और महत्वपूर्ण व्यक्तियों की उपलब्धियों का ही वृत्तान्त है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इतिहास में विकास को एक कारण न मानकर उसके अनेक कारण माने हैं। उनका सुझाव है कि इतिहासकार को घटनाओं और व्यक्तियों के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का भी अध्ययन करना चाहिये।

9. परिस्थितियों का सिद्धान्त (Theory of Circumstances)—आक्शाट नामक विद्वान का यह मानना है कि परिस्थितियों की समुचित व्याख्या में ही कारण के स्पष्ट प्रभाव को ढूँढ़ा जा सकता है। परिस्थितियों के संदर्भ में जब कार्य-कारण सम्बन्ध का उचित वर्णन किया जाता है तब घटना के सही स्वरूप का पता चल पाता है। प्रो० वाल्श ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है, "किसी निर्णायक कारण का ज्ञान तभी सम्भव है जब उस समय की परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके प्रभाव को ढूंढा जाये।"

10. विवेक सिद्धान्त (Rationalist Theory)—विद्वानों का एक वर्ग इतिहास लेखन में इतिहासकार के स्वविवेक को भी महत्वपूर्ण मानता है। इतिहासकार एक सामाजिक प्राणी होता है जिसके दृष्टिकोण को उसकी जाति, धर्म, क्षेत्रीयता एवं राष्ट्रीयता आदि प्रभावित करते हैं। परन्तु यदि वह इन प्रभावों से मुक्त होकर स्वविवेक से किसी घटना की व्याख्या करे तो अधिक सही निर्णय पर पहुँच सकता है। अपने विवेक के आधार पर ही मुख्य एवं गौण कारणों में अंतर कर सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से तथा इतने सारे सिद्धान्तों की व्याख्या के बाद भी ऐतिहासिक कारणत्व की समस्या का समाधान नहीं हो पाया है। इस सारे वाद-विवाद से ऊब कर कुछ विद्वान तो यह कहने लगे कि इतिहास के सभी दर्शन खराब हैं तथा अच्छा यही होगा कि हम उनमें से किसी को न अपनायें। परन्तु ऐसा करना तो सम्भव नहीं है। हम गोट्स चौक के कथन से सहमत होते हुए कह सकते हैं,"इतिहासकार को कारण या कारणों शब्द का प्रयोग करना चाहिये। उन्हें निश्चित शब्दों जैसे उद्देश्य (purpose), अवसर (occasion), पूर्ववर्ती

(antecedent), साधन (means) व मूलभाव (motive) का प्रयोग करना चाहिये। उसे हर हालात ऐतिहासिक घटनाओं के कारणों पर प्रकाश डालना चाहिये।''

इतिहास में नियतिवादी अवधारणा(Concept of Determinism in History)– इतिहासकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग नियतिवाद की अवधारणा में विश्वास करता है तथा यह मानता है कि समस्त घटनायें नियति के अनुसार घटित होती हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों, यूनानी रोमन विचारधारा तथा पाश्चात्य एवं अरब इतिहासकारों की विचारधारा में भी नियतिवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन दिखाई पड़ता है। हीगल एडम स्मिथ तथा कार्ल मार्क्स इतिहास में नियतिवादी अवधारणा के समर्थक हैं। डिकिन्सन ने लिखा ''नियतिवाद एक विश्वास है, मानव नियति की प्रेरणा से ही कार्य करता है। बाह्य, आन्तरिक और अलौकिक शक्तियां मानव को कार्य हेतु प्रेरित, प्रोत्साहित और बाध्य करती हैं।'' नियतिवादी अवधारणा के समर्थक विद्वानों का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव जो भी कार्य करता है वह इतिहास के प्रवाह में प्रवाहित होकर कर है। प्रसिद्ध अरब इतिहासकार इब्न खल्दून के अनुसार,''कार्य के सम्बन्ध में मनुष्य की न तो स्वतन्त्र इच्छा है है और न ही कोई स्वतन्त्र अस्तित्व होता है।'' यह नियतिवादी सिद्धान्त व्यक्तियों और साम्राज्य दोनों के संदर्भ मे लागू होता है। यदि मानव की नियति जन्म और मृत्यु है तो उत्थान और पतन साम्राज्य की नियति जिस प्रकार व्यक्ति बाल्य, युवा, प्रौढ़ तथा वृद्ध अवस्था और मृत्यु के चक्र में बंधा होता है, उसी प्रकार साम्रा को भी उद्भव, विकास, चरमोत्कर्ष और पतन की प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। इस बात को सिद्ध क के लिये भारतीय अथवा विश्व इतिहास के किसी भी युग और किसी भी राजवंश को लिया जा सकता है जि अनेक योग्य शासकों के होने के बाद भी वह साम्राज्य पतन की नियति को रोक नहीं पाया।

यदि हम हिन्दू धर्मशास्त्रों को देखें तो उनमें जगह-जगह पर नियतिवादी अवधारणा के विस्तृत उल्ले मिलते हैं। विद्वानों ने पुरूषार्थ की असफलता को भी नियति बताया है। भारतीय एवं यूनानी नियतिव अवधारणा का आधार युग चक्रवादी सिद्धान्त है। उनकी मान्यता है कि मानव जीवन की समस्त गतिविधि नियति के द्वारा संचालित होती हैं। सभी इतिहासकारों ने इतिहास में मानवीय इच्छा की नगण्यता को तथा अ नियति को स्वीकार किया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा कर्मवाद के सिद्धान्त और फल की चिन्त करने में भी नियतिवादी अवधारणा की ही पुष्टि होती है। अरब इतिहासकार इब्न खल्दून ने इतिहास की अव अवधारणा को मान्यता प्रदान करते हुए उसके चक्रीय स्वरूप को स्वीकार किया है और मृत्यु का ह अवश्यभावी बताया है। वह इतिहास को 'सामाजिक परिवर्तनों, संघर्षों, क्रांति तथा विद्रोह के फलस्वरूप रा के उत्थान एवं पतन का वर्णन' मानता है।

भरतीय विद्वानों के समान पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी नियतिवाद का ही समर्थन किया है। यू अवधारणा में भी इतिहास का स्वरूप युग चक्रवादी है। किसी भी काल को ले लें, चाहे पुनर्जागरण, रोमांटि बौद्धिक, लोकतान्त्रिक अथवा औपनिवेशिक युग हो, वे सभी नियतिवाद की अवधारणा के ही परिचायक हैं।

युग पुरूष अथवा महापुरूष की उपाधि केवल वे ही व्यक्ति प्राप्त करने में सफल रहे हैं जिन्होंने इति प्रवाह के अनुरूप आचरण किया है। जिन शासकों ने युग की प्रवृत्तियों के विरूद्ध आचरण करने का दुस्स किया है उन्हें असफलता के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। जैसा कि प्रो० गोविन्द चन्द पाण्डेय ने लि

है, "मानव इतिहास एक पूर्वांकित योजना के अनुसार अग्रसर होता जा रहा है। इसका लक्ष्य निश्चित है। वस्तुत: लक्ष्य प्राप्ति में सहायक अवस्थायें भी पूर्व निर्धारित हैं।"

यूनानी-रोमन ऐतिहासिक विचारधारा के अनुयायी विद्वानों ने भी इतिहास में नियतिवाद का समर्थन किया है। एक विद्वान ने तो यहाँ तक लिखा है कि देवता भी भाग्य एवं नियति के नियन्त्रण से मुक्त नहीं हो सकते। ईसाई धर्म के अनुसार भी ईश्वर इतिहास का प्रमुख अभिनेता है और समस्त घटनायें उसी की कृपादृष्टि से घटित होती हैं। लोसुए नामक विद्वान ने भी ऐतिहासिक गतिविधि को ईश्वरीय एकता का परिणाम माना है। इस प्रकार ईसाई धर्म की अवधारणा के अनुसार भी मानवीय कार्य ईश्वर की इच्छा का प्रतिबिम्ब है।

इतिहास में नियतिवाद तथा मानव व्यवहार के सम्बन्ध में दो विरोधी विचारधाराओं का वर्णन भी मिलता है। प्रथम के अनुसार मनुष्य का व्यवहार अपरिवर्तनीय है जबकि दूसरी विचारधारा मनुष्य के व्यवहार को परिवर्तनशील मानती है। अपनी-अपनी विचारधारा को स्थापित करने के लिए दोनों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं। पहली विचारधारा का समर्थक पॉविक नामक विद्वान है जो यह तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि मनुष्य के व्यवहार में समानता नहीं रहती तो इतिहास का स्वरूप अत्यन्त कठिन तथा दुरूह होता। फ्रांसीसी विद्वान अनातोले फ्रांस ने भी इस मत का समर्थन किया है।

कॉलिन्गवुड मानव व्यवहार में परिवर्तनशीलता का प्रबल समर्थक है। उसके अनुसार, "मानव व्यवहार निरन्तर परिवर्तनशील रहा है तथा इस परिवर्तन को रोकना असम्भव है।" रेनियर नामक विद्वान ने भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है,"परिवर्तन मानव जीवन का अभिन्न अंग है।" मानव व्यवहार में परिवर्तनशीलता के समर्थक अपने मत के समर्थन में कहते हैं कि यदि आदिकालीन मानव और उसकी विभिन्न अवस्थाओं की तुलना वैज्ञानिक युग के मानव के व्यवहार एवं अवस्था से की जाये तो दोनों के व्यवहार और स्थिति में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। जैसा कि झारखंड चौबे ने लिखा है, "प्राचीन युग में मानव व्यवहार में पुरुषार्थ, मध्य युग में साधु-संतों, कलाकारों और साहित्यकारों के स्वभाव में समरूपता तथा आधुनिक काल में व्यक्तिवादी दृष्टिकोणों को अपनाना मानव व्यवहार की परिवर्तनशीलता का अकाट्य प्रमाण है।" "ई० एच० कार ने दोनों विचारधारा के बीच एक सेतु का कार्य करते हुए कहा है, "मानवीय कार्य नियति के अधीन तथा कुछ स्वतन्त्र होते हैं।" परन्तु फिर भी यही कहा जा सकता है कि चूँकि विश्व की घटनायें नियति के फलस्वरूप घटित होती हैं इसलिये समस्त घटनाओं तथा मानवीय कार्यों का कारण नियति ही है।

छात्र क्रिया-कलाप (Student Activity)

1. इतिहास का अर्थ समझाते हुए उसकी परिभाषा कीजिये।
2. इतिहास की रैखिक प्रकृति को समझाकर लिखिये।
3. समस्त इतिहास समसामयिक है, इसे समझाकर लिखिये।
4. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समीक्षा कीजिये।
5. इतिहास का महत्व बताइये।
6. क्या इतिहास में पूर्वाग्रह से मुक्त होना सम्भव है?
7. कार्य-कारण के सिद्धान्त की विभिन्न अवधारणायें संक्षेप में लिखिये।

● सारांश (Summa

- इतिहास यूनानी शब्द हिस्टोरिया का पर्यायवाची है जिसका अर्थ होता है ज्ञान, शोध अथवा अनुसंध इसमें समाज एवं राजनीति के साथ-साथ आर्थिक विकास का भी अध्ययन किया जाता है। विभि विद्वानों ने इतिहास की अपने-अपने तरीकों से व्याख्या की है। वस्तुत: इतिहास अतीत और वर्तमान बीच एक अनन्त संवाद है तथा इतिहासकार का मुख्य कार्य वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत का अध्ययन
- इतिहास का सम्बन्ध अतीत की घटनाओं का विश्लेषण और उनके वर्णन से है। इसलिये इतिहासका लिये आवश्यक हो जाता है कि वह ऐतिहासिक तथ्यों की प्रकृति को सदैव ध्यान में रक्खे। कुछ वि मानते हैं कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है जबकि अन्य विद्वान इसका विरोध करते हैं। दोनों विचारधाराओं में सत्य का कुछ न कुछ अंश है।
- कुछ विद्वान इतिहास के क्रम को रैखिक मानते हैं जबकि कुछ चक्रीय, परन्तु इतिहास की प्रकृति अत्य जटिल है और गतिशील है। इतिहास आवश्यक रूप से व्यक्तिनिष्ठ और व्यक्तिगत होता है।
- इतिहास एक महत्वपूर्ण विषय है तथा अधिकांश विद्वान मानते हैं कि इतिहास का अध्ययन प्रत्येक व्य के लिये आवश्यक है, परन्तु इसके विपरीत कुछ विद्वान इतिहास के अध्ययन को व्यर्थ मानते हैं क्य व्यक्ति इतिहास से कोई सबक ही नहीं लेता। परन्तु फिर भी इतिहास के महत्व को नकारा नहीं सकता। इतिहास हमें जीवन का अर्थ समझाने का प्रयत्न करता है और यह न केवल व्यक्ति को शि करता है वरन उसके मस्तिष्क को प्रशिक्षित भी करता है। किसी भी समस्या या समाधान को तब तरह समझा नहीं जा सकता जब तक हमें उसकी पृष्ठभूमि अथवा इतिहास का सही-सही ज्ञान न हो।
- इतिहास का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है और धीरे-धीरे समाज के विकास के साथ-साथ इतिहास के में भी विकास होता जा रहा है। राजनीतिक के साथ-साथ अब इतिहास में सामजिक एवं आ परिवर्तनों के अध्ययन का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। अब इतिहास का स्वरूप विश्व-व्यापी हो गया
- इतिहास की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणाओं का वर्णन मिलता है। प्रथम, इतिहास का दृष्टिकोण और द्वितीय दार्शनिक अवधारणा। दोनों धारणाओं के प्रतिपादक विद्वानों ने अतीत आकलन अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप से किया है।
- आधुनिक युग में इतिहास-लेखन केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रह गया वरन् उसमें समाज एवं व्यवस्था का विस्तृत वर्णन भी सम्मिलित हो गया है। प्राचीन काल में इतिहास केवल राजनीतिक इति ही होता था परन्तु अब सामाजिक, आर्थिक, विधिक, सैन्य, कूटनीतिक एवं बौद्धिक इतिहास-साथ-साथ विश्व इतिहास भी इसके अभिन्न अंग बन गये हैं।
- इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता, विषयनिष्ठता एवं पूर्वाग्रह भी विवाद के विषय हैं। इतिहासकार सम रहने वाला ही एक व्यक्ति होता है जिस कारण उसके लेखन में तत्कालीन युग की परिस्थितियों उसकी अपनी भावनाओं का समावेश होना स्वाभाविक है। उसके अपने धर्म, जाति एवं राजनै विचारों के कारण इतिहास लेखन में पूर्वाग्रहों का आ जाना स्वाभाविक ही है, परन्तु उससे अपेक्षा जाती है कि वह अनुशासन और नियमों का पालन करते हुए एक फोटोग्राफर की तरह तस्वीर को उसी रूप में प्रस्तुत करे जिस रूप में उसने देखा है। फिर भी पूर्णत: पूर्वाग्रहमुक्त इतिहास अ इतिहासकार की कल्पना करना व्यावहारिक नहीं है।
- इतिहास में कार्य-कारण के बीच अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि कारण के अभाव में किस घटना का होना सम्भव नहीं है। कारण दूरवर्ती भी हो सकते हैं और तात्कालिक भी। विभिन्न देश विद्वानों के द्वारा अलग-अलग समयों पर कार्य-कारण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते र जैसे दैवीय सिद्धान्त, बुद्धिवादी सिद्धान्त, राष्ट्रीय सिद्धान्त, मनोभाव का सिद्धान्त, मार्क्सवादी सि ऐतिहासिक सिद्धान्त, बहुलवादी सिद्धान्त, परिस्थितियों का सिद्धान्त, विवेक का सिद्धान्त आदि।
- इतिहासकरों का एक बहुत बड़ा वर्ग नियतिवाद की अवधारणा में विश्वास करता है तथा यह मानता समस्त घटनायें नियति के अनुसार घटित होती हैं। इतिहास में नियतिवाद और मनुष्य के व्यवहार के स में दो विरोधी अवधारणायें हैं। एक के अनुसार मनुष्य का व्यवहार अपरिवर्तनीय है जबकि परिवर्तनशील मानती है।

● अभ्यास प्रश्न (Exercise Question)

1. विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर इतिहास का अर्थ समझाइए।
2. इतिहास की प्रकृति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
3. क्या इतिहास की पुनरावृत्ति होती है? यदि नहीं तो क्यों?
4. इतिहास की रैखिक और चक्रीय प्रकृति से आप क्या समझते हैं? समझाकर लिखिये।
5. अधिुनिक युग में इतिहास का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है। विस्तार से लिखिये।
6. इतिहास की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों के विचार लिखिये। इस सम्बन्ध में आपका क्या मत है?
7. इतिहास के कितने प्रकार माने जाते हैं? प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिये।
8. इतिहास में वस्तुनिष्ठता अत्यधिक महत्वपूर्ण है। क्या आपके मत में किसी इतिहासकार के लिये पूर्वाग्रहों से बच पाना सम्भव है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
9. इतिहस में कार्य-कारण सम्बन्ध पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
10. इतिहास में नियतिवादी अवधारणा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अध्याय

2

इतिहासवाद एवं इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध (HISTORICISM AND RELATION OF HISTORY WITH OTHER DISCIPLINES)

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- प्रस्तावना (Introduction)
- इतिहासवाद (Historicism)
- इतिहासवाद की विशेषतायें (Characteristics of Historicism)
- इतिहास एवं अन्य सामाजिक विज्ञान (History and other Social Sciences)
- इतिहास एवं सहायक विज्ञान (History and Auxiliary Sciences)
- इतिहास एवं अन्य विज्ञान (History and other Sciences)
- इतिहास एवं साहित्य (History and Literature)
- इतिहास एवं विधि (History and Law)
- छात्र क्रिया-कलाप (Student Activity)
- सारांश (Summary)
- अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

● उद्देश्य (Objective

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होगे—

- इतिहासवाद को समझने में
- इतिहासवाद की विशेषताओं को समझने में
- इतिहासवाद एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों के सम्बन्ध को समझने में
- इतिहास एवं सहायक विज्ञानों के सम्बन्ध को समझने में
- इतिहास एवं साहित्य के सम्बन्ध को समझने में
- इतिहास एवं विधि के सम्बन्ध को समझने में

● प्रस्तावना (Introductio

इतिहासवाद का अर्थ है कि समस्त तथ्यों अथवा घटनाओं में, चाहे वे आर्थिक, सामाजिक, राजनै अथवा सांस्कृतिक हों, ऐतिहासिक ज्ञान का समुचित प्रयोग। वस्तुत: इतिहासवाद अतीत के सत्यान्वेषण विधा है। कुछ विद्वानों के अनुसार इतिहासवाद का अर्थ है आध्यात्मिक सृष्टि की ऐतिहासिक विधा सत्यान्वेषण की विकास प्रक्रिया। 18 वीं शाताब्दी में अनेक प्रसिद्ध दार्शनिकों ने अतीत की गवेषण

इतिहासवाद का प्रयोग किया है। जैसा कि डॉ० **झारखंड चौबे** ने लिखा है, "अतीत का पूर्णत्व ही वर्ममान है, क्योंकि वर्तमान का आविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है। इस दृष्टिकोण ने मानव हृदय में एक नवीन चेतना और उत्कंठा जाग्रत की तथा मनुष्य ने वर्तमान के संदर्भ में स्वंय को समझने के लिये अतीत का अवलोकन किया।"

● इतिहासवाद (Historicism)

वर्तमान युग के पीछे एक दीर्घकालीन प्रयास की भूमिका का योगदान रहा है। इसका ज्ञान प्राप्त करना ही इतिहासवाद है। साधारण शब्दों में, वर्तमान को समझने के लिये अतीत के अवलोकन को ही इतिहासवाद कहते हैं। इस विषय पर इतिहासकारों में एक गम्भीर वाद-विवाद चलना शुरू हुआ है कि क्या मानव संस्कृति के विषय में एक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक मूल्यों के मूल्यांकन के लिये पर्याप्त आधार प्रदान करता है। प्रथम विश्व युद्ध से इतिहासकारों ने इतिहावाद का अधिकाधिक प्रयोग करना प्रारम्भ किया तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों के ऐतिहासिक परिवर्तनों से सम्बन्ध पर उनका बड़ी गम्भीरता से ध्यान गया।

इतिहास की दरिद्रता (Poverty of Historicism)—कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि इतिहास की न कोई उपयोगिता और न ही उसमें शिक्षा का कोई तत्व है। ऐसे इतिहासकार को निराशावादी कहा गया है, जिनमें प्रमुख है **हीगेल**। यदि इतिहासवाद मुनष्य के उत्थान और विकास का मानदंड मान लिया जाये तो ऐतिहासिक घटनायें मानव समाज के लिये अभिशाप सिद्ध होंगी। **हेनरी फोर्ड** भी यह मानता है कि इतिहास एक अन्धकारमय कोठरी है। **पीलियोन** ने भी लिखा है कि इतिहासवाद के संदर्भ में कौन यह दावा कर सकता है कि इतिहासवाद जीवंत तथा विचार सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान तथा दर्शन का अंतिम लक्ष्य है। इन इतिहासकारों के अतिरिक्त महान विजेता नेपोलियन के भी यही विचार थे और उसे इतिहास एक **'अनुपयोगी विषय'** लगता था। इस विचारधारा के इतिहासकार अपने मत के समर्थन में इतिहास की अनेक विध्वंसक एवं नकारात्मक घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनसे मानव ने कोई शिक्षा नहीं ली। उन्होने कहा है कि समस्त विश्व प्रथम विश्व-युद्ध के भयानक परिणामों से त्रस्त रहा परन्तु मानव ने उससे कोई शिक्षा नहीं ली तथा 20 वर्ष से कम समय में ही दोबारा समस्त संसार द्वितीय विश्व युद्ध का साक्षी बना। ये इतिहासकार इन घटनाओं के संदर्भ में यह प्रश्न करते हैं कि क्या हम इसे मानवीय समाज का विकसित स्वरूप कह सकते हैं। **कार्ल आर०पामर** जैसे विद्वानों ने इन घटनाओं के कारण ही बाध्य होकर इन्हें 'इतिहासवाद की दरिद्रता' कहकर पुकारा है। **ईसाईया बर्लिन** तथा **पामर** ने इतिहासवाद की समीक्षा करते हुए लिखा है कि परीक्षण, अनुमान की असम्भावना, नीवनता, जटिलता तथा भविष्यवाणी की असफलता आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनके आधार पर विद्वान इतिहासवाद की दरिद्रता की पुष्टि करते हैं। **ई०एच० कार** का यह मानना है कि पामर ने उन सभी तथ्यों एवं विचारों को इतिहासवाद की दरिद्रता माना है जिन्हें वह पसंद नहीं करता। दक्षिण अफ्रीका में श्वेतों द्वारा अश्वेतों पर किये जाने वाले अत्याचारों, अरबों एवं यहूदियों में होने वाले निरन्तर संघर्ष, हिटलर के द्वारा यहूदियों पर किये गये अत्याचारों तथा ऐसी अन्य बहुत सी घटनाओं को देखते हुए कोई भी बुद्धिमान और विवेकशील मनुष्य इसे प्रगति अथवा विकास की ओर समाज के झुकाव के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। सम्भवत: इन्हीं दुखद एवं विध्वंसक ऐतिहासिक घटनाओं से अत्यन्त क्षुब्ध एवं पीड़ित होकर विद्वानों ने इसे

इतिहासवाद की दरिद्रता का नाम दिया है। **चार्ल्स ओमन** तो इतना क्षुब्ध हो गया उसने इतिहासवाद को **'विषाक्त इतिहास'** का नाम दे दिया।

हीगेल और कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि संसार में सभी जड़ और चेतन तत्व सदैव परस्पर संघर्ष में लीन हैं, जिसके कारण विद्वान यह मानते हैं कि संघर्ष की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ही पुरातन का स्थान नवीनता ग्रहण करती है। कुछ इसी प्रकार के विचार **टॉयनबी** के भी हैं जब वह कहता है, "सामाजिक विकास तथा प्रगति के अणु तत्व सदैव कार्यरत रहते हैं। एक समाज और संस्कृति का अंत होने की स्थिति में दूसरा समाज और संस्कृति उसका स्थान ग्रहण कर लेते हैं।" अपने इन शब्दों से टॉयनबी भी हीगेल एवं मार्क्स के द्वन्दवाद एवं वर्ग संघर्ष से सहमत होता हुआ दिखाई पड़ता है।

ज्ञान एवं इतिहासवाद (Knowledge and Historicism)—कुछ विद्वानों ने इतिहासवाद का प्रयोग इतिहास दर्शन के रूप में किया है। ट्रॉयलेत्स (Troeltsh) ने इतिहासवाद की व्याख्या समस्त ज्ञान और समस्त प्रकार के अनुभवों को ऐतिहासिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में देखने की प्रवृत्ति के रूप में किया है। वह इस प्रवृत्ति को आधुनिक मस्तिष्क की दो मूलभूत खोजों में से एक मानता है। दूसरी प्रवृत्ति मानता है प्रकृति के प्रति सामान्यीकरण तथा परिमाणात्मक (quantitative) की पद्धति। 1924 में कार्ल मेन्हीम (Karl Manheim) ने इतिहासवाद पर एक निबन्ध लिखा, जिसके अनुसार सम्पूर्ण मध्य युग में विश्व के धर्मवैज्ञानिक विचार की अपेक्षा लौकिक विचार पर बल दिया गया था। वह सांसारिक दृष्टिकोण का समर्थक था। इतिहासकारों ने भी इस परिवर्तन की वकालत की और विश्व के सम्बन्ध में लौकिक या सांसारिक दृष्टिकोण को ही इतिहासवाद कहकर पुकारा। 1936 में **मीरेक** (Meirecke)ने भी अपना विचार प्रस्तुत किया कि आधुनिक और प्राचीन इतिहास-बोध में एक मौलिक विरोध है। प्राचीन राजनीतिक दर्शन सार्वभौमिक एवं अपरिवर्तनीय, प्राकृतिक न्याय को नैतिक एवं राजनैतिक निर्णय या आधार मानता था, परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि चूँकि विश्व अद्वितीय, स्थूल एवं वैयक्तिक (unique, concrete and individual) है इसलिये परिवर्तन प्रकृति का नियम है। **क्रोचे** (Croce) भी इस विचार से असहमत था कि इतिहास की व्याख्या प्राकृतिक रूप में की जा सकती है या उस प्रकार से जिस प्रकार वैज्ञानिक गैर-मानवीय विश्व की करते हैं। इस प्रकार की व्याख्या का अर्थ है कि ऐतिहासिक शक्तियों का मशीनी अथवा पुनरावृत्तिपूर्ण व्यवहार होता है, जो ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में सही नहीं है। वीको एवं हीगेल के ही समान क्रोचे भी इतिहास को मानवीय आत्मा का स्वंय विकास (Self Development) मानता था। उसका यह दृढ़ विचार था कि वास्तविक ज्ञान केवल इतिहास की सही समझ से ही आता है। उसके इन विचारों से ही प्रेरित होकर स्पैन्गलर ने यह घोषणा की थी वास्तविकता द्वैतता है तथा सम्पूर्ण विश्व को दो शाखाओं में बांटा जा सकता है—एक प्रकृति एवं दूसरा इतिहास।

ई०एच० कार ने भी इतिहासवाद के सिद्धान्त का समर्थन किया है, लेकिन वह यह मानता है कि उसकी व्याख्या उस प्रकार से नहीं की जा सकती जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने मानव-रहित विश्व की है। वह यह मानता है कि इस प्रकार की व्याख्या का अर्थ तो ऐतिहासिक शक्तियों के साथ यन्त्रवत व्यवहार करना है। उसका विश्वास है कि जीवन और वास्वतिकता निरन्तर परिवर्तित होने वाली भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वीको और हर्डर ने भी कार के मत का समर्थन किया। प्रसिद्ध इतिहासकार **डिल्थे** का भी मत है कि इतिहास का उद्देश्य आत्म प्रकाश है और सम्पूर्ण इतिहास मन की अभिव्यक्ति होता है। **बी० शेख अली** ने भी इसी प्रकार

के विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है,"संक्षेप में, इतिहासवाद यह विश्वास है कि किसी भी तथ्य की समुचित समझ एवं इसके महत्व का सही मूल्यांकन विकास की प्रक्रिया में इसकी भूमिका के आधार पर किया जाये।"

प्रसिद्ध इतिहासकार डिल्थे भी मानता है कि इतिहास का उद्देश्य आत्मप्रकाश है और सम्पूर्ण इतिहास मन की अभिव्यक्ति होता है। वस्तुत: इतिहास का अध्ययन आत्मचिन्तन की एक प्रकिया है जिसके आधार पर आत्मबोध की सत्यता से मानव वर्तमान जीवन पर नियन्त्रण बनाता है। वर्तमान और अतीत कदाचित एक-दूसरे से अलग नहीं हैं क्योंकि हम सदैव अतीत से प्रभावित रहते हैं और अतीत ही वर्तमान के निर्माण की आधारशिला होता है। बी०शेखअली यह मानते हैं कि इतिहास दर्शन का तात्पर्य इतिहास में अर्थ की खोज करना, अनुभव के आधार पर एकता के लिये याचना करना, ऐतिहासिक शक्तियों की व्याख्या का प्रयास करना तथा सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक भिन्नता के अध्ययन के आधार पर उत्थान एवं पतन की यंत्र रचना को समझना है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति की किसी वस्तु का समुचित ज्ञान ही इतिहासवाद और उसे समझना है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि हम उस भूमिका को जानें जिसको वह सभी क्षेत्रों में अभिनीत करता है।

❹ इतिहासवाद की विशेषतायें (Characteristics of Historicism)

इतिहासवाद के दो प्रमुख तत्व हैं ऐतिहासिकता तथा इतिहासवादिता।४ **बैरकलाफ** समस्त तत्वों को ऐतिहासिक नहीं मानता। इतिहासवाद के अन्तर्गत केवल उन्हीं घटनाओं को ऐतिहासिक माना जाता है जिनकी ऐतिहासिकता विभिन्न साक्ष्यों के द्वारा प्रमाणित की जा सके। उदाहरण के लिये यह कहना कि रुस की बोल्शेविक क्रान्ति के फलस्वरूप धार्मिक भावना का अंत हो गया था, ऐतिहासिक तथ्य की श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता।

इतिहासवाद और व्याख्या (Historicism and Explanation)—विद्वानों की मान्यता है कि व्यावहारिक अतीत की आधारशिला पर वर्तमान का निर्माण हुआ है जो भविष्य को प्रभावित करेगा। इसी को जे०डेवी ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है," अतीत के प्रति अनुकम्पा अतीत के लिये नहीं अपितु सुरक्षित एवं सुसम्पन्न वर्तमान के लिये करते हैं जो सुखद भविष्य का निर्माण करेगा।"**कालिन्गवुड** के शब्दों में,"इतिहासकार जिस अतीत का अध्ययन करता है वह अतीत मृत नहीं अपितु इतिहासकार के मस्तिष्क में सजीव होता है।" एक आधुनिक विद्वान ने लिखा है कि इतिहास इतिहासकार का अनुभव और एक व्याख्या है जिसके आधार पर इतिहासकार अतीत को वर्तमान में परिणत कर देता है। अतीत के अध्ययन एवं सत्यान्वेषण के लिये अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग सिद्धान्तों को माध्यम बनाया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि अतीत की व्याख्या भूतकाल के मानदंडो के आधार पर ही की जानी चाहिये जिसके लिये इतिहासकार का दृष्टिकोण रचनात्मक होना आवश्यक है अन्यथा इतिहासकार रहस्यवादी अथवा निराशावादी दार्शनिक होकर रह जाएगा। **डेविड थॉमसन** का भी विचार है कि यदि अतीत की व्याख्या वर्तमान के सन्दर्भ में न की जाये तो उसका कोई अर्थ ही नहीं होता है। वह अतीत को भविष्य और वर्तमान की एक परिकल्पनात्मक विभाजक रेखा मानता है। **रांके** भी यह मानता है कि इतिहास में लेखक अपने अतीत सम्बन्धी निर्णय को प्रस्तुत करता है, जिसमें उसका उद्देश्य वर्तमान को प्रशिक्षित करना तथा आने वाली पीढ़ी का मार्गदर्शन करना होता है। **ई०एच०कार** के शब्दों में, "तथ्य अतीत का प्रतिनिधित्व करता है तो इतिहासकार

वर्तमान का। वस्तुत: इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अन्तर्क्रिया की अविछिन्न प्रक्रिया एवं वर्तमान तथा अतीत के बीच अनवरत् परिसंवाद है।'' यही कारण है कि **एक्टन** ने अतीत को वर्तमान में मानवीय कार्यों का परिणाम कहा है। अंत में हम **डा० झारखंड चौबे** के शब्दों में कह सकते हैं, ''इतिहास का नैतिक आदर्शवादी दृष्टिकोण आधुनिक इतिहासकारों को ग्राह्य नहीं है। आधुनिक इतिहासकार अतीत का अध्ययन अतीत के लिये नहीं अपितु वर्तमान दृष्टिकोण से वर्तमान के लिये करता है। उसका अभिप्राय अतीत का अध्ययन सुसम्पन्न वर्तमान को प्रशिक्षित करने और सुखद भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने के लिये होता है।''

निष्कर्ष (Conclusion)—उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इतिहासवाद अतीत की गवेषणा की एक विधा है जिसके अन्तर्गत अन्य विधाओं की सहायता से वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत का प्रस्तुतीकरण परिकल्पनात्मक पद्धति से किया जाता है। इतिहास के गतिशील होने के कारण इतिहासवाद अतीत की गति का अध्ययन करता है।

यह कहा जा सकता है कि इतिहासवाद में समाजों के विकास का व्याख्यात्मक अध्ययन होता है। ऐसा इसलिये क्योंकि मानव की समस्त उपलब्धियाँ सामान्यत: उसके भौगोलिक वातावरण तथा राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित होती हैं। **हेरनी मिरेन** ने लिखा भी है, ''इतिहास समाज में रहने वाले मानव के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।''

एक आधुनिक इतिहासकार ने लिखा है कि इतिहास दर्शन तथा इतिहासवाद से तात्पर्य ऐतिहासिक ज्ञान से है। इसको भली प्रकार समझने की दो पद्धतियाँ हैं—विश्लेषणात्मक और दूसरी परिकल्पनात्मक विश्लेषणात्मक का स्वरूप वैज्ञानिक होता है, जैसा कि **ब्यूरी** ने इतिहास को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है। परिकल्पनात्मक पद्धति को दार्शनिक इतिहासकारों ने अपने-अपने विचारों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित किया है। इतिहासवाद की व्याख्या तो अनेक विद्वानों ने की है जैसे इब्न खल्दून, पामर, कार, हर्डर, स्पेन्गलर, डिल्थे, क्रोचे, हीगेल, मार्क्स एवं कामटे आदि। इनमें से कामटे एवं मार्क्स की सामाजिक एवं आर्थिक व्याख्या को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है तथा यह माना गया है कि आर्थिक उत्पादन तथा वितरण व्यवस्था सामाजिक स्थिति को नियन्त्रित करती है।

अंत में हम इतिहासवाद को ई० एच०कार के शब्दों में इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं,''वस्तुत: समस्त मानवीय कार्य-व्यापार नियत भी है और स्वतन्त्र भी है और इस बात पर निर्भर करते हैं कि उन्हें देखने का आपका दृष्टिकोण क्या है। आम आदमी की तरह वह (इतिहासकार) विश्वास करता है कि मानवीय कार्य-व्यापार के पीछे कारण होते हैं जिनकी पुष्टि की जा सकती है। दैनिक जीवन की भाँति इतिहास भी असंभव हो जाये, यदि यह मान लिया जाये। इन कारणों की जांच करना इतिहासकार का विशिष्ट कर्त्तव्य है। इससे यह सोचा जा सकता है कि उन्हें मानव व्यवहार के कार्य-कारणपरक या नियत स्वरूप से अधिक रूचि होगी, परन्तु वह स्वतन्त्र इच्छा शक्ति को रद्द नहीं कर सकता, सिवाय इस अमान्य कल्पना के कि ऐच्छिक कार्यों के पीछे कोई कारण नहीं होता।''

● इतिहास एवं अन्य सामाजिक विज्ञान (History and Other Social Sciences)

अधिकांश विद्वानों ने यह माना है कि इतिहास एक केन्द्रीय विषय है जिसका अनेक विषयों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक विद्वान इतिहास को 'सामाजिक विज्ञान की जननी' मानते हैं। चूँकि इतिहास मानव जीवन के

विभिन्न पक्षों का अध्ययन करता है, इसलिये इसका विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से गहरा सम्बन्ध है। यह एक विशद् विषय है जो किसी न किसी प्रकार प्रत्येक विषय को छूता है। जैसा कि **ब्यूरी** ने लिखा है, "इसमें न केवल राजनीति अपितु धर्म, कला शासन तथा विधि एवं परम्पराओं का अध्ययन है जिसमें व्यक्ति और समाज की बौद्धिक मौलिक और भावनात्मक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अत: इसका सम्बन्ध अन्य विषयों से होना स्वाभाविक है।" इतिहास विगत मानवीय समाज का मानवतावादी एवं व्याख्यात्मक अध्ययन है। इसलिये यह आवश्यक है कि महान इतिहास लेखकों को मानव से सम्बद्ध अन्य विषयों का भी ज्ञान हो ताकि वह तुलनात्मक दृष्टि से दोनो के महत्व को स्पष्ट कर सके। **ट्रेवेलियन** ने इतिहास को **'सभी विषयों का निवासग्रह'** तथा **जॉन्सन** ने **'अन्य सामाजिक विज्ञानों की पृष्ठभूमि'** कहा है। **एच० सी० डारबे** के शब्दों में, "इतिहास सामाजिक विज्ञान की जननी है और सभी का पोषण इसी से होता है। सामाजिक विज्ञान में इसकी वही प्रधानता है जो प्रकृति विज्ञान में गणित की है।"

1. इतिहास एवं भूगोल (Hstory and Geography)—इतिहास एवं भूगोल का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहासकारों ने लिखा है कि भूगोल वह मंच है जिस पर इतिहास के नाटक का मंचन किया जाता है। बी० शेख अली ने लिखा है कि सुन्दर स्त्री इतिहास की दो आँखे हैं भूगोल और कालक्रम विज्ञान (Chronology)।भूगोल की समुचित जानकारी के अभाव में इतिहास की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन असम्भव है। **प्रो० माइकल** के शब्दों में, "भौगोलिक आधार के अभाव के व्यक्ति एवं इतिहास निर्माता स्वंय हवा में चलते हुए अनुभव करते हैं जैसे कि उन चीन की तस्वीरों में जहाँ धरातल का अभाव होता है। पृथ्वी को केवल गतिविधियों का स्थल मानकर उसकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिये। वास्तव में पृथ्वी कई प्रकार से मानव के खान-पान एवं जलवायु को प्रभावित करती है।" इतिहास के समुचित अध्ययन के लिये भूगोल की जानकारी अनिवार्य है। उसका पहला कारण तो यह है कि भौगोलिक वातावरण पर ध्यान देने एवं उसका विश्लेषण करने से ही इतिहास का निर्धारण किया जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि जिस भी युग के लिये विश्वसनीय स्रोतों का अभाव हो, जैसे कि प्राचीन काल, उस काल के इतिहास को जानने का मुख आधार भूगोल ही है। इसीलिये प्रसिद्ध विद्वान जे०आर०ग्रीन ने प्रकृति को 'समस्त स्रोतों से अधिक विश्वसनीय एवं पूर्ण दस्तावेज' माना है।

बकिल, हन्टिंगटन, मांटेस्क्यू, अरस्तू आदि ने यह स्वीकार किया है कि देश की सभ्यता एवं व्यक्ति पर जलवायु का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह मानव व्यवहार को प्रभावित करती है और राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

इंग्लैण्ड के इतिहास पर देश के भौतिक भूगोल का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड के औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया पर उसकी भौगोलिक स्थिति ने अत्यधिक प्रभाव डाला। ब्रिटिश द्वीप की सम्पूर्ण जानकारी के बिना इनके विषय में उचित अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इंग्लैण्ड द्वारा जल-शक्ति के विकास के पीछे भी उसकी भौगोलिक स्थिति ही थी। एक द्वीप होने के कारण वह यूरोप के देशों से अलग-थलग था तथा यूरोप में होने वाले युद्धों का उस पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता था। अपनी इसी स्थिति के कारण उसने अपनी नौसैनिक सर्वोच्चता स्थापित की। इंग्लैण्ड ही नहीं, अन्य देशों के इतिहास पर भी उनकी भौगोलिक स्थिति का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। महाराष्ट्र का इलाका यदि कम उपजाऊ और पहाड़ी न होता तो सम्भवत: मराठे इतने परिश्रमी न होते। बी० शेख अली ने विभिन्न देशों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं के पीछे भूगोल के महत्व को

स्पष्ट करते हुए लिखा है,"भारत के उत्तर और पूर्व में आक्रमण के विरूद्ध क्रमश: हिमालय और आसाम के जंगलों ने रूकावट का कार्य किया है। इसी प्रकार चीन के एकाकीपन के लिये हिमालय और गोबी तथ मंगोलियन मरूस्थल भी उत्तदायी सिद्ध हुए हैं। नैपोलियन और हिटलर सहित अनेक विदेशी आक्रान्ताओं क पराजय का एक महत्वपूर्ण कारण रूस की भीषण ठंड थी। मिस्र के भूगोल ने उसकी प्राचीन सभ्यता क अक्षुण्णता प्रदान की है। भारत के इतिहास में सिंधु और गंगा नदी की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है पुनर्जागरण काल से भौगोलिक खाजों, जैसे अमरीका की खोज और भारत के नवीन मार्गों की खोज का भ विश्व इतिहास के निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान है।"

इस प्रकार किसी देश अथवा क्षेत्र विशेष के इतिहास का अध्ययन करने के लिये वहां के भूगोल का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। एक आधुनिक विद्वान ने इतिहास के अध्ययन में भूगोल के महत्व का उदाहरण देते हुए कहा कि इतिहास की समस्त प्रकाशित पुस्तकों में प्रारम्भ में उस देश के भूगोल से सम्बन्धित पाठ होता है जो भूगोल के अध्ययन एवं ज्ञान के महत्व का स्पष्ट प्रमाण है तथा उस देश विशेष के इतिहास पर भूगोल के प्रभाव को दर्शाता है जिसका वर्णन उस पुस्तक में उपलब्ध है।

2. इतिहास एवं अर्थशास्त्र (History and Economics)—भूगोल के ही समान अर्थशास्त्र से भी इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी भी देश के इतिहास में लोगों की अर्थिक स्थिति, आर्थिक कार्यकलाप, वाणिज्य एवं व्यापार की स्थिति का अत्यधिक महत्व है। एक इतिहासकार के लिये अपने युग की आर्थिक स्थिति का समुचित ज्ञान आवश्यक है, तभी वह उस देश के सामाजिक एवं राजनीतिक इतिहास का सही प्रकार से वर्णन कर सकता है। समाज में व्यक्ति की समस्त गतिविधियां अर्थ से संचालित होती हैं, अत: इतिहासकार के लिये अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धातों से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है।

आर्थिक इतिहास कन्डोरेसे, कॉमटे, बकिल एवं बरी के समय से लोकप्रिय हुआ। परन्तु उसको सबसे अधिक लोकप्रिय बनाया मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या ने। उसने इतिहास को एक नया आयाम दिया जिसके परिणामस्वरूप वर्ग-संघर्ष, कृषि, उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य, भू-राजस्व, उत्पादन एवं वितरण की पद्धतियां तथा ऐसे ही अन्य अनेक आर्थिक कार्यकलापों का इतिहास में विस्तार से वर्णन होने लगा। जबसे डारविन ने मानव के अस्तित्व के लिये संघर्ष तथा मार्क्स के द्वारा इसकी आर्थिक नियतिवाद के रूप में व्याख्या की है तब से आर्थिक इतिहास, विशेष रूप से रुस की 1917 की क्रांति के बाद से, इतना अधिक महत्वपूर्ण हो गया है कि इसने मनुष्य की अन्य गतिविधियों को पीछे छोड़ दिया है। दास प्रथा, सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद एवं सामाजवाद आदि सभी की व्याख्या आर्थिक उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में की जाने लगी है। परिणामस्वरूप इतिहासकारों के एक नवीन वर्ग का उदय हुआ है। उन्हें 'आर्थिक इतिहासकारो' के नाम से जाना जाता है। सामान्य इतिहासकार इतिहास की रचना करते समय आर्थिक इतिहासकारों के निष्कर्षों का उपयोग करता है।

अनेक भारतीय इतिहासकार भी मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होने भी उसी विशेष दृष्टिकोण से इतिहास की व्याख्या की है। इनमें हीरेन मुखर्जी, रजनी पाम दत्त, डी०डी कोशाम्बी, इरफान हबीब आदि प्रमुख हैं। अब किसी भी इतिहासकार के लिये यह सम्भव नहीं रहा कि वह बिना अर्थशास्त्र के ज्ञान के इतिहास लेखन का कार्य पूर्ण कर सके। कोई भी इतिहासकार 20वीं शताब्दी के इतिहास की रचना

करते समय क्षतिपूर्ति, विश्व-व्यापी आर्थिक मंदी, न्यू डील आदि की उपेक्षा नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट है कि इतिहास का अर्थशास्त्र से गहरा सम्बन्ध है।

3. इतिहास एवं समाजशास्त्र (History and Sociology)—इतिहास एवं समाजशास्त्र के बीच गहरा सम्बन्ध है। इतिहास एवं समाजशास्त्र दोनों में समाज में रहने वाले मानव का ही वर्णन होता है, यद्यपि मानव के प्रति दृष्टिकोण में दोनों में अंतर है। विद्वानों की यह मान्यता है कि मनुष्य के सामाजिक व्यवहार का वर्णन करने के लिये समाजशास्त्र को इतिहास की उतनी ही आवश्यता है जितनी कि इतिहास को समाजशास्त्र की। प्रसिद्ध इतिहासकार **टॉयनबी** ने तो यहाँ तक लिखा है, "समाज वे अणु हैं जिनसे मिलकर इतिहास बना है और इतिहास के घटक समाज हैं, न कि व्यक्ति और राष्ट्र।" सामाजिक इतिहास के अन्तर्गत हम मनुष्य एवं समाज की विभिन्न संस्थाओं एवं समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो मानव जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है।

इतिहास एवं समाजशास्त्र को निकट लाने में **दुर्खीम** का महत्वपूर्ण योगदान है जिसने ऐतिहासिक तथ्यों के सम्बन्ध में 'एक सूक्ष्म, प्रयोगात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति' को अपनाया। **मैक्स वेबर,** जोकि एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री था, ने ऐतिहासिक अध्ययन पर अत्यधिक बल दिया। इनसे पहले ऑगस्ट कॉमटे की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही थी। **वेबस्टर** ने अवधारणाओं की कल्पना की और कुछ संस्थाओं का अध्ययन किया जिन्होंने इतिहास और समाजशास्त्र को प्रभावित किया है। दुर्खीम और वेबर जैसे समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र को आंशिक रूप से इतिहास पर निर्भर कर दिया है, यद्यपि इस समन्वय से इतिहास को ही अधिक लाभ हुआ है। ई०एच०कार ने लिखा है,"समाजशास्त्र का यदि लाभप्रद अध्ययन होता है तो वह इतिहास की तरह अद्वितीय और सामान्य के बीच सम्बन्ध कायम करे, लेकिन यह गतिशील भी हो, यह वर्तमान समाज का ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन और विकास का भी अध्ययन करे। अधिक समाजशास्त्रीय इतिहास ही ऐतिहासिक समाजशास्त्र है जो दोनों के लिये लाभप्रद है। दोनों की सीमायें काफी विस्तृत हैं और दोनों ओर से आना-जाना सम्भव है।"

इस प्रकार इतिहास एवं समाजशास्त्र के बीच गहरा सम्बन्ध है। अंत में हम **बी० शेख अली** के शब्दों में कह सकते हैं, "संक्षेप में समाजशास्त्र सम्बन्धों को समझने में इतिहास की सहायता कर रहा है, जो केवल समाज का अध्ययन नहीं है वरन् निरन्तर होने वाले समाजिक परिवर्तन एवं विकास का भी अध्ययन है। समाजिक प्रक्रियायें एवं सामाजिक कारक इतिहास को नवीन दृष्टिकोण देकर वंशानुगत इतिहास से अलग हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत कर रहें हैं। आजकल भारत में भी हमारे इतिहासकार सामाजिक इतिहास को अधिक महत्व दे रहे हैं जो पश्चिम में पहले ही लोकप्रिय हो चुका है।"

4. इतिहास एवं मनोविज्ञान (History and Psychology)—इतिहास एवं मनोविज्ञान में भी सम्बन्ध है। आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों के उपयोग के बिना इतिहासकार की कृति कल्पना मात्र रह जाएगी। इसीलिये व्यक्ति तथा समाज की प्रवृत्तियों तथा कार्यवाहियों का विश्लेषण करते समय इतिहासकार मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि की सहायता लेता है। **प्रो० मार्विक** का विचार है, "कुछ ऐतिहासिक समस्याओं के बौद्धिक विश्लेषण के लिये कुछ परिस्थितियों में सामाजिक विज्ञान आवश्यक है। ऐतिहासिक लेखन भी एक इतिहास के समान हो जाएगा यदि वह आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों का उपयोग नहीं करता है।" **प्रो० बार्ने**

ने लिखा है,"इतिहास प्रत्येक चरित्र के सम्बन्ध में कुछ मनोवैज्ञानिक उदाहरण प्रस्तुत करता है तथा विभिन्न दशाओं में व्यवहार और तरीकों के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी प्रदान करता है।"

एक आधुनिक विद्वान के अनुसार एक दूसरे अर्थ में भी इतिहास एवं मनोविज्ञान का सम्बन्ध है क्योंकि व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसका उसके ऊपर प्रभाव पड़ता है। वस्तुत: इतिहासकार के लेखन एवं निर्णयों पर उसके व्यक्तिगत जीवन एवं वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। इसके अभाव में उसके निर्णय पूर्वाग्रहों से पूर्ण होंगे तथा उसके लिये यह सम्भव नहीं होगा कि उसके लेखन में वस्तुनिष्ठता आ पाये।

इतिहास पर मनोविज्ञान के प्रभाव की पुष्टि इस बात से भी होती है कि पहले इतिहासकार केवल युद्ध के उत्पत्ति के कारण के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देते थे तथा उसके परिणामों की उपेक्षा करते थे। परन्तु आजकल मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण इतिहासकार युद्ध के परिणामों एवं प्रभावों का भी वर्णन करने लग गये हैं। समृद्ध मनोविज्ञान को समझकर इतिहासकार विभिन्न क्रांतियों में जनता के योगदान का भी आकलन कर सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान ने इतिहास के परम्परागत रूप से चले आ रहे अध्ययन में भी परिवर्तन किया है। **प्रो० बार्नें** के शब्दों में कह सकते है, "इतिहासकार मनोविज्ञान को पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। मानव सभ्यता के आदिकाल से आज तक का इतिहास मनोविज्ञान की विषय-सामग्री के लिये विभिन्न परिस्थितियों में आचरण प्रतिमानों को प्रस्तुत करता है।"

5. इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र (History and Political Science)—इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र के बीच गहरा सम्बन्ध है। **प्रो० एक्टन** ने लिखा है,"राजनीति की मुख्य धारा इतिहास है। यह नदी के बालू में स्वर्ण कण के समान है।" **बी० शेखअली** ने लिखा है कि इतिहास एक विस्तृत विषय है जिसके अनेक पहलू हैं, जैसे राजनीतिक, संवैधानिक, कूटनीतिक, सैनिक, आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक आदि। इतिहास केवल इन क्षेत्रों से सम्बन्धित ही नहीं, अपितु यह उसके प्रमुख अंग हैं। किसी देश की संवैधानिक कूटनीतिक, सैनिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को स्वरूप प्रदान करने में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राजनीति अंग्रेज़ी इतिहासकारों का इतना प्रिय क्षेत्र रहा है कि उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि समस्त इतिहास राजनीतिक इतिहास है; इतिहास मूल है और राजनीति उसका फल तथा पूर्व की राजनीति ही वर्तमान की इतिहास है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक राजनीतिक कार्यकलाप ही मानव जाति के जीवन का प्रमुख अंग रहे हैं। हमेशा तथा प्रत्येक देश में या तो एक व्यक्ति ने या केवल कुछ व्यक्तियों ने समस्त जनता पर शासन किया है। चाहे राजतन्त्र हो, एकतन्त्र हो, तानाशाही हो अथवा प्रजातन्त्र, यह बात सभी पर लागू होती है। आधुनिक युग में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, संसद तथा अन्य राजनीतिक अभिकरण ही समाचारों में छाये रहते हैं कि एक इतिहासकार का ध्यान इन्हीं पर केन्द्रित रहता है। जैसा कि **पॉलिबियस** ने लिखा है कि इतिहास का उपयोग राजनीति की कला के अध्ययन में निहित है।

इतिहासकार जब इतिहास लेखन करता है तो वह केवल राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा ही घटनाओं का वर्णन नहीं करता वरन् उसे प्रारम्भिक राजनीतिक संस्थाओं की प्रकृति तथा मूलभूत राजनीतिक सिद्धान्तों को भी सदैव ध्यान में रखना होता है। इतिहास और राजनीति में घनिष्ठता का ही परिणाम है कि अमरीका और इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों में इतिहास और राजनीतिशास्त्र का अध्ययन एक ही विभाग द्वारा होता था। कुछ भारतीय

विश्वविद्यालयों में भी यह परम्परा प्रचलित रही है। परन्तु अब समाजशास्त्र के ही समान राजनीतिशास्त्र भी एक स्वतंत्र विषय बन गया है। वास्तव में जितनी इतिहास को राजनीतिशास्त्र की आवश्यकता है उतना ही राजनीतिशास्त्र के विद्वान के लिये इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। जैसा कि एक विद्वान ने लिखा भी है कि राजनीतिक पहलू ही वह भाग है जिसका उल्लेख इतिहास लेखन के अन्तर्गत किया जाता है और इतिहास ज्ञान ही राजनीतिज्ञ को इस योग्य बना देता है कि वह राजनीति को भली प्रकार समझकर अपनी भूमिका का ठीक प्रकार एवं कुशलता से निर्वाह कर सके।

6. इतिहास एवं दर्शन शास्त्र (History and Philosophy)—इतिहास एवं दर्शन शास्त्र के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है क्योंकि कुछ विद्वान दोनों के बीच परस्पर सम्बन्ध मानते हैं जबकि कुछ दोनों को बिल्कुल भिन्न मानते हैं। परन्तु यदि गम्भीरता से देखा जाये तो हम यह समझ सकते हैं कि दार्शनिक चिन्तन ऐतिहासिक परिस्थितियों के अधीन होता है। जैसा कि **क्रोचे** ने लिखा है,"दार्शनिक के प्राक्कथन, लक्षण अथवा संस्थान आविर्भाव निश्चित परिस्थितियों के अधीन है। यदि इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक वस्तु और विषय का इतिहास होता है तो यह तथ्य भी स्वीकार कर लेना चाहिये कि सभी का अपना पृथक-पृथक दर्शन भी होता है।"

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, जिसका वर्णन इतिहासकार एवं दार्शनिक दोनों ही सामाजिक मूल्यों एवं समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप करते हैं। इतिहास एवं दर्शनशास्त्र के बीच परस्पर सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिये एक आधुनिक इतिहासकार ने लिखा है कि प्रारम्भिक इतिहास लेखकों ने अपने पूर्वजों के नाम एवं कार्यों को महत्व व स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से अपने संस्मरणों के आधार पर इतिहास लिखा था। उन्होंने अतीत में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को वर्णित किया। परन्तु आधुनिक समय में विद्वानों ने मानव के क्रिया-कलापों के साथ-साथ उसके परिवेश को जानकर मानव-मस्तिष्क की विचारधारा को भली प्रकार जानने के जो प्रयास किये, उसके आधार पर इतिहास धीरे-धीरे दर्शन का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इतिहास एवं दर्शन शास्त्र के बीच परस्पर निकटता है तथा इतिहास में दर्शन शास्त्र का प्रयोग होता है एवं दर्शनशास्त्र का अपना इतिहास होता है।

इतिहास एवं सहायक विज्ञान (History and Auxiliary Sciences)—जिस प्रकार अन्य अनेक विषयों को इतिहास की सहायता की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार अन्य ऐसे कई विषय हैं जिनसे इतिहास सम्बन्धित है और उनकी उसे आवश्यकता पड़ती है। एक इतिहासकार को मानव विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में प्राप्त किये गये परिणामों का अपने लेखन में लाभ उठाना चाहिये। इन विषयों को सहायक विषय या सहायक विज्ञान कहा जाता है जिनमें कालक्रम विज्ञान (Chronology), पुरातत्व (Archaeology), नृविज्ञान (Anthropology), जीवाश्म विज्ञान (Paleography), लिपि विज्ञान (Graphology), मुहर विज्ञान (Sigillography), मुद्राशास्त्र (Numismatics) आदि उल्लेखनीय हैं। एक विद्वान ने इन सहायक विषयों को इतिहास की दासी (Handmaids of History) कहकर पुकारा है। उनके अनुसार इतिहास के तथ्यों की प्रकृति कुछ ऐसी होती है कि एक तथ्य का दूसरे तथ्य से इतना निकट सम्बन्ध होता है कि प्रत्येक को सिद्ध करने के लिये विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। ऐसे में ये सहायक विज्ञान अत्यधिक सहायक होते हैं।

1. इतिहास और पुरातत्व (History and Archaeology)—इतिहास बहुत सारे तथ्य पुनर्स्थापना में पुरातत्व विज्ञान का अत्यधिक ऋणी है। सर जॉन मार्शल तथा उनेक साथी पुरातत्ववेत्ताओं इस बात का श्रेय जाता है कि वे हमारे समक्ष सिन्धु सभ्यता को लेकर आये। यह एक ऐसी उपलब्धि थी भारत के प्राचीन इतिहास को बदल कर रख दिया। इस खोज से पहले हम यही मानते आये थे कि भार प्राचीनतम् सभ्यता आर्य सभ्यता है परन्तु इस खोज ने हमारे सामने एक अत्यधिक विकसित शहरी सिन्धु सभ्यता को इतिहास के सामने प्रस्तुत कर दिया। पुरातत्व का सम्बन्ध उत्खनन से है जिनमें प्राप्त की अनेक वस्तुएँ, मुद्रा, मुहर, कंकाल आदि इतिहास संरचना में अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। लिखित के अभाव में कुछ सभ्यताओं का पूरा अध्ययन ही खुदाईयों में प्राप्त वस्तुओं के आधार पर किया गया है कि सिन्धु सभ्यता। पुरातत्व विशेषज्ञों ने पुरालेख अध्ययन द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास को समृद्ध कि पुरातात्विक अध्ययन भारत में ही नहीं वरन् विश्व के अन्य अनेक देशों में भी लोकप्रिय है। प्राक्—इतिह केवल मात्र पुरातत्व द्वारा आकलन किये गये स्थानों से प्राप्त समग्री के आधार पर ही रचा गया है। इस इतिहास तथा पुरातत्व विज्ञान में गहरा सम्बन्ध है।

2. पुरालेख शास्त्र (Epigraphy)—पुरालेख शास्त्र अथवा अभिलेख शास्त्र प्राचीन अभिलेख पढ़ने की विधा है। प्राचीन काल में तथा मध्यकाल में भी स्मारकों, पत्थरों आदि पर अभिलेख अंकित कर परम्परा थी या ताम्र पर लिखकर प्रशस्तियां या भूमि अनुदान दिये जाते थे। इस शास्त्र के ज्ञाता इन सामग्रि अध्ययन के आधार पर इतिहास के पुनर्निर्माण का प्रयास करते हैं। अशोक की राजाज्ञायें भारत के विभिन्न में मिली हैं जिन्हें पढ़कर जेम्स प्रिन्सेप ने अशोक के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान की, f विषय में हम पहले अनभिज्ञ थे। तमिलनाडु और कर्नाटक में ऐसे अभिलेख हजारों की संख्या में मिले हैं जि सहायता से इस क्षेत्र के इतिहास का पुनर्निर्माण किया गया है। एक इतिहासकार ने इनको सूचना की वास्त खान (veritable mine of information) कहा है। इतिहासकार में या तो स्वंय इन्हें पढ़ने की ये होनी चाहिये या उनसे पढ़वा ले जो उन भाषाओं को जानते हैं जिनमें ये अभिलेख लिखे गये हैं। ऐसे बह अभिलेखों का संकलन किया गया है जिनमें 'एपीग्राफिया इंडिका' (Epigraphia Indica) उल्लेखनीय

3. इतिहास एवं नृविज्ञान (History and Anthropology)—नृविज्ञान या मानव f प्रजातियों का अध्ययन करता है। नृजाति के अध्ययन से न केवल ऐतिहासिक तथ्यों का पता चला है अनेक ऐतिहासिक समस्याओं के समाधान में भी मदद मिली है। भारत में विभिन्न नृजातीय लोग रहते हैं f अध्ययन से इतिहासकारों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया है कि भारत एक 'प्रजातीय अजायबघर' है। भा आर्य एवं अनार्य अथवा द्रविड़ जाति के लोग रहते हैं जिनका अध्ययन नृविज्ञान का एक प्रमुख विष श्रीलंका में जाति के आधार पर ही तमिल अपना स्वायत्त शासन चाहते हैं तथा फिलीस्तीन में फिलीस्तीन राज्य की मांग करते हैं। जर्मनी में हिटलर यहूदियों का दुश्मन था और अमरीका में नीग्रो लोगों को प्रज दृष्टिकोण से हीन समझा जाता है। इस प्रकार इतिहास की विभिन्न घटनाओं, झगड़ों, भतभेदों एवं समस्याओ निराकरण में नृविज्ञान का अध्ययन अत्यधिक सहायक होता है।

4. इतिहास एवं कालक्रम विज्ञान (History and Chronology)—इतिहास में समय तत्व केन्द्रीय है, जिसके बिना किसी भी घटना का सही आकलन सम्भव नहीं है। समय (Time), अ अथवा अन्तराल (Space) एंव कारण (Cause) किसी भी समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के

आवश्यक हैं। इतिहास में विभिन्न घटनाओं का वर्णन उसी काल क्रम के अनुसार किया जाता है जिसमें वे घटित हुई। इसी के साथ-साथ दो महत्वपूर्ण घटनाओं के बीच के अन्तराल का भी स्पष्ट वर्णन किया जाता है। कालक्रम की अस्पष्टता के कारण ही प्राचीन भारत के कुछ वंशों के शासन काल का सही समय बता पाना ही कठिन हो गया है। इसके कारण अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार इतिहास के उचित अध्ययन के लिये *काल-क्रम विज्ञान का समुचित अध्ययन अत्यावश्यक है।*

5. जीवाश्म विज्ञान (Paleography)—जीवाश्म विज्ञान प्राचीन लिखावट या हस्तलिपि (Hand writing)का व्यवस्थित अध्ययन है। जिस प्रकार मनुष्य ने शब्दों और वर्णमाला की रचना की यह समय-समय पर और अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग है। जीवाश्म विज्ञान इनके विकास पर प्रकाश डालता है। एक जीवश्म विज्ञानशास्त्री न केवल प्रचीन अभिलेखों या हस्तलिपियों को पढ़ सकता है वरन् वे कब लिखी गई उनका समय भी निर्धारित कर सकता है। वह यह भी बता सकता है कि हस्तलिपि किन-किन लोगों के द्वारा लिखी गई । प्रिंट प्रेस के अविष्कार से पूर्व बहुत सारे लेखक संक्षिप्ताक्षर (Abbreviations) का इस्तेमाल करते थे। जीवश्म विज्ञान शास्त्री इनको भी पढ़ सकते हैं। विद्वानों का यह विचार है कि विज्ञान व्यक्ति की विवेचनात्मक शक्तियों (Critical faculties) को पैना बनाता है। आधुनिक तकनीकी ने इसके विकास में बहुत योगदान दिया है। विद्वानों का एक समूह सिन्धु घाटी सभ्यता की लिपि को इसके सहारे पढ़ने का प्रयास कर रहा है।

6. मुद्रा शास्त्र (Numismatics)—मुद्राशास्त्र भी इतिहास के अध्ययन में बहुत अधिक सहायक है। बहुत सारी ऐसी मुद्रायें मिली हैं जिनसे इतिहास की अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हुआ है। इन मुद्रओं के मिलने के स्थान से बहुत सारी सभ्यताओं के उद्भव स्थल की जानकारी प्राप्त हुई है। एक बात और महत्वपूर्ण है और वह यह कि इन मुद्राओं में प्रयुक्त धातुओं से उनको जारी करने वाले राजवंशों के समय में आर्थिक स्थिति की भी पर्याप्त जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिये, गुप्त वंश के प्रारम्भिक शासकों चन्द्रगुप्त एवं समुद्रगुप्त के समय में जारी सिक्के सोने और चाँदी के थे जिससे उस समय की समृद्धि का पता चलता है। परन्तु उनके उत्तराधिकारियों के समय में सिक्कों की धातु में गिरावट आने लगी जिससे विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया कि उस समय राज्य की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी नहीं थी जिसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है।

● इतिहास एवं अन्य विज्ञान (History and Other Sciences)

इतिहास का सम्बन्ध प्राकृतिक विज्ञानों एंव व्यावहारिक तथा प्रयोगात्मक विज्ञानों के साथ भी है। इतिहास एवं प्राकृतिक विज्ञान की विषय-वस्तु और वैज्ञानिक विधि ऐतिहासिक विधि से बिल्कुल अलग होने के बाद भी अनेक आधुनिक विद्वानों ने अलग-अलग तर्कों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इतिहास एक विज्ञान है। कॉलिन्गवुड के शब्दों में, "प्राकृतिक विज्ञान सम्पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं है। अपनी सत्ता के लिये इसे दूसरे ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है, जो एक प्रकार का ऐतिहासिक ज्ञान कहा जा सकता है।" हर्डर नामक विद्वान ने भी प्राकृतिक विज्ञान तथा इतिहास में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध माना है। उसके शब्दों में,"मानव के विकास में प्राकृतिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि सारा ब्रह्मांड एक सावयवी शक्ति शरीर है। वस्तुत: इतिहास प्रकृति से अधिक आधारभूत है क्योंकि प्रकृति का ज्ञान भी इतिहास की ही उपज है। मानव

का चांद पर उतरना भी एक ऐतिहासिक तथ्य है। अत: दोनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पूर्णतया स्प
स्पेन्गलर और टॉयनबी आदि विद्वानों ने भी प्राकृतिक विज्ञान और इतिहास के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्ब
का समर्थन किया है। प्रो० वाल्श का भी यह विचार है कि मानव के कार्यों और उपलब्धियों पर सबसे
प्रभाव प्राकृतिक घटनाओं का ही पड़ता है।

प्रो० वाल्श के अनुसार चूँकि इतिहासकार वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा ऐतिहासिक घटना
बोधगामी बनाता है, अत: दोनों के निकट सम्बन्धों को नकारा नहीं जा सकता। इतिहास और विज्ञान
विकासवादी सिद्धान्त को माना है। इतिहास में भी सभ्यताओं के विकास का वर्णन है तथा डारविन ने भी
के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इतिहासकारों ने मानव के विकासवादी सिद्धान्त को मान्यता प्रदान
यद्यपि इतिहास में हम सक्रिय मस्तिष्क का अध्ययन करते हैं जबकि विज्ञान में निर्जीव वस्तुओं का, पर
भी दोनों के बीच परस्पर सम्बन्ध तो है ही। जीव विज्ञान हमें यह बताता है कि मानव के संघर्ष में विजय
शक्तिशाली की ही होती है। कुछ वंशानुगत भिन्नतायें हैं जो जीव वैज्ञानिक हैं तथा वे सामाजिक असम
को जन्म देतीं हैं। मानव जाति विज्ञान से हमें जातियों तथा उनके लक्षणों का पता चलता है। जाति एक
वैज्ञानिक यथार्थ है जिसका प्रचार करके नाजी पार्टी ने नोर्डिक जाति को श्रेष्ठतम् जाति बताया, जो वि
शासन करने के लिये बनी है। इस प्रचार ने विध्वंसात्मक परिणामों वाली ऐतिहासिक घटनाओं को जन्म
भारत की वर्ण-व्यवस्था, दक्षिण अफ्रीका की 'रग-भेद की नीति, नाजियों के द्वारा यहूदियों पर अत
अमरीका में नीग्रो जातियों के साथ भेदभाव आदि सब ऐतिहासिक वास्तविकतायें है जो मानवजातीय भि
पर आधारित हैं। इन सारी वास्तविकताओं को मानव जाति विज्ञान के मौलिक तथ्यों के गहन अध्ययन बि
समझा जा सकता।

● इतिहास एवं साहित्य (History and Litera

इतिहास एवं साहित्य दोनों में निकट का सम्बन्ध है। दोनों का ही मुख्य विषय समाज में रहने वाला
है। अन्तर इतना है कि जहाँ इतिहास में अतीत का वर्णन होता है वहाँ साहित्य का सम्बन्ध वर्तमान और
से है, यद्यपि साहित्य की एक शाखा आत्मकथा अतीत का भी वर्णन करती है। इतिहास और साहित्य द
कल्पना का भी भरपूर प्रयोग होता है, यद्यपि इसकी मात्रा साहित्य की अपेक्षा इतिहास में बहुत कम है।
जर्मन इतिहासकार राँके ने इतिहास को साहित्य से मुक्त करने का प्रयास किया, परन्तु गिब्बन, मैकॉ
ट्रेविलियन ने अत्यधिक साहित्यिक शैली में इतिहास लिखा। हेरोडोटस, थ्यूसिडाइड्स, लिवी एवं टैसिटस
ने जिस साहित्यिक शैली को अपनाया उसने उनके इतिहासलेखन को अत्यधिक सुन्दरता प्रदान की।
स्कॉट जैसे लेखकों के ऐतिहासिक उपन्यासों ने इतिहास को लोकप्रिय बनाया और इतिहास को एक
आयाम प्रदान किया। आचार्य चतुरसेन एवं जयशंकर प्रसाद जैसे हिन्दी के साहित्यकारों ने ऐतिहासिक
लिख कर इतिहास को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ऐलेक्जेन्डर ड्यूमा, विक्ट
टॉलस्टाय आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। ऐतिहासिक नाटकों ने अनेक बार कुछ ऐतिहासिक
को समझ पाने में नई दृष्टि प्रदान की है। इस प्रकार इतिहास में साहित्य की भूमिका को कभी भी नकारा न
सकता तथा इतिहास में साहित्य का त्याग निश्चित रूप से इतिहास को हानि पहुँचायेगा। इतिहास की पुस्त
मनोरंजक तथा लोकप्रिय बनाने में साहित्यिक भाषा और साहित्यकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। य
एक बात और उल्लेखनीय है कि इतिहास लेखन में साहित्य एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में काम कर
उदाहरण के लिये, हमें उत्तर वैदिक कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान रामायण तथा महाभारत
महाकाव्यों से ही होता है। इसी प्रकार संगम युग की महत्वपूर्ण जानकारियाँ संगम साहित्य से ही हो

इतिहास की संरचना में साहित्यिक स्रोतों का भरपूर उपयोग किया जाता है। इसलिये अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि साहित्य और इतिहास में गहरा सम्बन्ध है।

● इतिहास एंव विधि (History and Law)

इतिहास एवं विधि का सम्बन्ध भी महत्वपूर्ण है। कानूनों का निर्माण तब किया जाता है जब कुछ घटनायें होती हैं तथा बाद में ये घटनायें इतिहास बन जाती हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि दोनों ही प्रकार से या तो कानून इतिहास का परिणाम है या आज के कानून भविष्य की घटनाओं पर प्रतिबन्ध लगाते हैं जो इतिहास बन जाता है। विधिक इतिहास या विधि का इतिहास वह अध्ययन है जो यह बताता है कि विधि का विकास कैसे हुआ है और इसमें समय-समय पर परिवर्तन क्यों आते रहे हैं। विधिक इतिहास का सभ्यताओं के विकास से भी सम्बन्ध है तथा सामाजिक इतिहास के विस्तृत अध्ययन में भी इसका महत्व है। समय-समय पर आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों में परिवर्तन का विधिक संस्थाओं पर भी प्रभाव पड़ा है। एक अधिवक्ता के लिए , यदि वह विधि का बुद्धिमत्तापूर्ण और रचनात्मक तरीके से प्रयोग करना चाहता है, तो उसके लिये केवल यही जानना पर्याप्त नहीं है कि कानून है क्या वरन् इसका उद्भव कहाँ से हुआ और इसका अस्तित्व किस बात पर आधारित है। वे अधिवक्ता जो विधिक प्रणाली के विकास के ऐतिहासिक सन्दर्भ को भली प्रकार समझते हैं वे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं।

छात्र क्रिया कलाप (Student Activity)

1. इतिहासवाद का अर्थ समझाकर लिखिये।
2. इतिहासवाद की निर्धनता को स्पष्ट कीजिये।
3. इतिहास एवं भूगोल के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये।
4. इतिहास एवं साहित्य के बीच क्या सम्बन्ध है, समझाकर लिखिये।

● सारांश (Summary)

- इतिहासवाद का अर्थ है समस्त तथ्यों अथवा घटनाओं में, चाहे वे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक हों, ऐतिहासिक ज्ञान का समुचित प्रयोग।
- वर्तमान युग के पीछे एक दीर्घकालीन प्रयास की भूमिका का योगदान रहा है। इसका ज्ञान प्राप्त करना ही इतिहासवाद है।
- कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को एक अनुपयोगी विषय तथा एक अन्धकारमय कोठरी कहा है। वे यह मानते हैं कि न तो इतिहास की कोई उपयोगिता है और न ही उसमें शिक्षा का कोई तत्व है। इसे वे इतिहास की दरिद्रता कहकर पुकारते हैं।
- कुछ विद्वानों ने इतिहासवाद का प्रयोग दर्शन के रूप में किया है। उन्होंने इतिहासवाद की व्याख्या समस्त ज्ञान और समस्त प्रकार के अनुभवों को ऐतिहासिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में देखने की प्रवृत्ति के रूप में किया है। वे यह मानते हैं कि इतिहास का उद्देश्य आत्म प्रकाश है और सम्पूर्ण इतिहास मन की अभिव्यक्ति होता है।
- विद्वानों की मान्यता है कि व्यावहारिक अतीत की आधारशिला पर वर्तमान का निर्माण हुआ है जो भविष्य को प्रभावित करेगा। उनका मानना है कि अतीत की व्याख्या भूतकाल के मानदण्डों के आधार पर ही की

जानी चाहिये। वे यह मानते हैं कि आधुनिक इतिहासकार को अतीत का अध्ययन अतीत के लि अपितु वर्तमान के लिये करना चाहिए।

- इतिहासवाद को भली प्रकार समझने की दो पद्धतियां हैं—विश्लेषणात्मक तथा दूसरी परिकल्पन विश्लेषणात्मक का स्वरूप वैज्ञानिक होता है जबकि परिकल्पनात्मक पद्धति दार्शनिक है।
- इतिहास मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करता है, इसलिये इसका विभिन्न सामाजिक वि से गहरा सम्बन्ध है।
- इतिहास एवं भूगोल का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भौगोलिक परिस्थितियां किसी भी दे इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण तत्व होती हैं।
- इतिहास एवं अर्थशास्त्र का भी गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति की समस्त गतिविधियां अर्थ से संचालित हैं, इसलिये इतिहासकार के लिये अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों से परिचित होना अत्यन्त आव है। बहुत सारे लेखकों ने आर्थिक इतिहास की रचना की है।
- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा इतिहास में उसी के कार्यकलापों का वर्णन होता है। इस सामाजशास्त्र और इतिहास के बीच गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक सम्बन्धों को समझने में समाज इतिहास की सहायता करता है।
- इतिहास एवं मनोविज्ञान में भी गहरा सम्बन्ध है। व्यक्ति तथा समाज की प्रवृत्तियों तथा कार्यवाहि विश्लेषण करते समय इतिहासकार मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि की सहायता लेता है। मनोविज्ञान के प्रभ कारण अब इतिहासकार युद्ध के केवल कारणों का ही ध्यान नही देता वरन् उसके प्रभवों एवं परि का भी वर्णन करने लगा है।
- इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र के बीच गहरा सम्बन्ध है। इतिहास एक विस्तृत विषय है जिसके अनेक हैं, जिनमें से राजनीतिक पहलू अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पूर्व की राजनीति ही वर्तमान का इतिहास है यदि इतिहास मूल है तो राजनीति उसका फल है।
- दर्शनशास्त्र एवं इतिहास में भी परस्पर सम्बन्ध है क्योंकि दार्शनिक चिन्तन ऐतिहासिक परिस्थितिय अधीन ही होता है। यदि प्रत्येक वस्तु और विषय का पृथक-पृथक इतिहास होता है तो उनका प पृथक दर्शन भी होता है।
- इतिहास लेखन में अन्य विषयों की भी सहायता की आवश्यकता होती है, इसीलिये इन्हें सहायक वि या सहायक विषय कहा जाता है।
- इतिहास और पुरातत्व का गहरा सम्बन्ध है। पुरातत्व का सम्बन्ध उत्खनन से है, जिनमें प्राप्त शिल्प अनेक वस्तुएँ, कंकाल आदि इतिहास संरचना में अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। प्राक इतिहास तो के मात्र पुरातत्व द्वारा किये गये स्थानों से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही रचा गया है।
- पुरालेखशास्त्र अथवा अभिलेख शास्त्र प्राचीन अभिलेखों को पढ़ने में सहायता प्रदान करता है। अभिलेखों को पढ़ने से हमें इतिहास में बहुत सारी छिपी हुई जानकारियों मिलती हैं। उदारहण के ि अशोक की राजाज्ञायें जिन्होंने अशोक के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान की।
- इतिहास के अध्ययन में नृविज्ञान भी अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। नृविज्ञान के अध्ययन से न के अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का पता चला है वरन् अनेक ऐतिहासिक समस्याओं के समाधान में भी म मिली है।
- कालक्रम की अस्पष्टता के कारण अनेक भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार इतिहास के उचित अध्य के लिये कालक्रम विज्ञान का समुचित अध्ययन अत्यावश्यक है।
- इतिहास के अध्ययन में जीवश्म विज्ञान भी अत्यधिक सहायक होता है। एक जीवाश्म विज्ञानशा प्राचीन अभिलेखों एवं हस्तलिपियों को पढ़कर उनके लिखने का समय और लिखने वाले व्यक्तियों विषय में भी बता सकता है। इससे इतिहास लेखन में बहुत मदद मिलती है।

- मुद्राशास्त्र भी इतिहास के अध्ययन में बहुत अधिक सहायक है। बहुत सारी मुद्रायें ऐसी मिली हैं जिनसे इतिहास की अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ है।
- इतिहास का सम्बन्ध प्राकृतिक विज्ञानों एवं व्यावहारिक तथा प्रयोगात्मक विज्ञानों के साथ भी है। चूंकि इतिहासकार वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं को बोधगम्य बनाता है, इसलिये दोनों के निकट सम्बन्धों को नकारा नहीं जा सकता।
- इतिहास एवं साहित्य दोनों में निकट का सम्बन्ध है क्योंकि दोनों का ही मुख्य विषय समाज में रहने वाला मनुष्य ही है। अनेक बार ऐतिहासिक नाटकों एवं उपन्यासों ने कुछ ऐतिहासिक प्रसंगों को समझ पाने में नई दृष्टि प्रदान की है। इतिहास लेखन में साहित्य एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में कार्य करता है।
- इतिहास एवं विधि का सम्बन्ध भी महत्वपूर्ण है। विधिक इतिहास का सभ्यताओं के विकास से भी सम्बन्ध है तथा सामाजिक इतिहास के विस्तृत सम्बन्ध में भी इसका महत्व है।

● अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. इतिहासवाद की विशेषताओं पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
2. इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये।
3. सहायक विज्ञान क्या होते हैं? इतिहास लेखन में इनका महत्व बताइये।
4. पुरातत्व विज्ञान इतिहास लेखन में किस प्रकार सहायक हुआ है, इस पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।
5. प्रकृति विज्ञान एवं इतिहास के परस्पर सम्बन्धों का विवरण कीजिये।
6. इतिहास लेखन में ऐतिहासिक साहित्य का महत्व बताइये।

● संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. इतिहास दर्शन—कोलेश्वर राय।
2. हिस्ट्री : इट्स थ्योरी एण्ड मैथड – बी० शेख अली।
3. इतिहास लेखन : इतिहास लेखन का इतिहास—ताजराम शर्मा।
4. इतिहास लेखन—एन० सब्रमण्यम।
5. इतिहास लेखन: भूत एवं वर्तमान-कीरित के०शाह।
6. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन—डा०हरिशंकर श्रीवास्तव, वेणी प्रकाशन।

❑

अध्याय

3

इतिहास एवं पद्धति
(HISTORY AND METHODOLOGY)

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- प्रस्तावना (Introduction)
- इतिहास के स्रोत (Sources of History)
- प्रारम्भिक शोध कार्यविधि (Preliminary Research Operations)
- विश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि (Analytical Research Operations)
- संश्लेषणात्मक शोध कार्यविधि (Synthetic Research Operations)
- उपसंहारात्मक शोध कार्यविधि (Concluding Research Operations)
- सारांश (Summary)
- संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

● उद्देश्य (Objectiv

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- इतिहास के स्रोतों को जानने में;
- प्रारम्भिक शोध कार्यविधि को जानने में;
- विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक शोध कार्यविधि को जानने में;
- उपसंहारात्मक शोध कार्य विधि को जानने में।

● प्रस्तावना (Introducti

ऐतिहासिक पद्धति का अर्थ है वह तकनीक जिसके द्वारा अतीत की घटनाओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है। यह हमें इस बात में सहायता करता है कि इतिहास किस प्रकार लिखा जाये। इतिहास एक विज्ञान भी है और कला भी, इसलिये इतिहास लेखन की पद्धतियां अन्य विषयों से भिन्न होती पूर्ण वस्तुनिष्ठता सम्भव न होने के कारण इतिहासकार का उद्देश्य अतीत की इस रूप में पुन: रचना चाहिये जिस रूप में वह घटित हुआ था। वर्तमान में इतिहास लेखन की विधियां पूर्व की अपेक्षा अधिक और भिन्न भी। इतिहासकार या किसी भी विद्वान के द्वारा लिखा गया प्रत्येक वृत्तान्त शोध की श्रेणी में आता। शोध एक ऐसा कार्य है जिसका उद्देश्य होता है कोई चीज नई प्रकाश में लाना या पहले से ही उपल ज्ञान भंडार में व्यवस्थित अध्ययन अथवा किसी विषय पर नवीन खोज के माध्यम से कुछ नया जोड़ने

प्रयास होता है। ऐतिहासिक शोध का अर्थ है अतीत की घटनाओं का अध्ययन कर उनकी वर्तमान के संदर्भ में व्याख्या तथा उन घटनाओं का महत्व निर्धारित करना। यह काम अत्यधिक क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से करना आवश्यक होता है। इसके लिये सबसे पहले शोधार्थी को विषय का चयन करना होता है तथा उसके पश्चात विभिन्न स्रोतों से सामग्री का चयन।

● इतिहास के स्रोत (Sources of History)

ऐतिहासिक स्रोतों की सहायता से इतिहासकार अतीत के इतिहास की संरचना करता है। आवश्यक विषय-सामग्री जुटाने के लिये उसे अनेक स्रोतों का सहारा लेना होता है क्योंकि समस्त सामग्री केवल ग्रन्थों में ही उपलब्ध नहीं होती। अन्य स्रोतों में प्रमुख हैं पुरातत्व, पुरालेख, मुद्राशास्त्र, साहित्य (धार्मिक एवं गैर-धार्मिक दोनों)तथा समय-समय पर आये हुए यात्रियों के विवरण। इन सब स्रोतों की मिली-जुली सहायता से कोई शोधार्थी अपना शोध-कार्य करता है। ऐतिहासिक स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जाता है—प्रधान (Primary) तथा गौण (Secondary)। प्रधान स्रोत सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं तथा इस श्रेणी में आते हैं मौलिक दस्तावेज तथा उन व्यक्तियों के साक्ष्य जो किसी घटना के स्वयं प्रत्यक्षदर्शी अथवा गवाह थे। दूसरी श्रेणी में आते हैं गौण स्रोत, जो उन व्यक्तियों का साक्ष्य है जो उस घटना के समय स्वयं मौजूद तो नहीं थे वरन् उन्होंने अन्य स्रोतों का आश्रय लेकर अपना लेखन पूरा किया है। वस्तुत: गौण स्रोत भी काफी कुछ प्रधान स्रोतों पर ही आधारित होते हैं और उनका भी अपना महत्व है जिस कारण शोधकर्त्ता को उनका भी गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए। **प्रो० मारविक** ने दोनों स्रोतों के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रधान स्रोत अप्रकाशित स्रोत होते हैं जो कुशल इतिहासकार के लिये अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, गौण साधन प्रकाशित पुस्तकें, निबन्ध आदि हैं।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि प्रधान स्रोतों में गौण आंकडे भी हो सकते हैं।। उदाहरण के लिये समाचार पत्र यद्यपि प्रधान स्रोत होते हैं परन्तु उनमें दिये गये सारे समाचार प्रधान स्रोतों की श्रेणी में नहीं आते। जैसे सम्पादक या संवाददाताओं द्वारा दिए गये समाचार तो प्रधान स्रोतों की श्रेणी में आते हैं, किन्तु ऐसे भी बहुत से समाचार होते हैं जो सरकारी स्रोतों पर आधारित नहीं होते और जिनकी प्रमाणिकता संदिग्ध भी हो सकती है। यह उदाहरण है प्रधान स्रोत एवं गौण स्रोत के मिले जुले होने का।

प्रधान स्रोतों के भेद (Kinds of Primary Sources)—प्राय: पांडुलिपि या हस्तलिखित प्रति, जो एक ही प्रति में उपलब्ध हो, प्रधान स्रोत मानी जाती है। हस्तलिखित दस्तावेजों को ऐतिहासिक दस्तावेज माना जाता है क्योंकि उनको लिखने वाला या तो स्वयं घटना से सम्बन्धित होता है या उस घटना का प्रत्यक्षदर्शक होता है। मुद्रित अनेक प्रतिलिपियों की अपेक्षा भी हस्तलिखित प्रति का अधिक महत्व माना जाता है। कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं तथा वे मुद्रित दस्तावेज को पांडुलिपि से अधिक महत्वपूर्ण भी मानते हैं और विश्वसनीय भी। प्रो० मारविक के अनुसार इसका कारण यह है कि पांडुलिपि किसी लेखक की अपनी दिमागी उपज भी हो सकती है।

यहां पर एक और तथ्य ध्यान में रखने योग्य है और वह यह कि प्रधान तथा गौण स्रोतों के बीच स्पष्ट अंतर कर पाना भी कभी-कभी सम्भव नहीं हो पाता है और एक ही प्रकार का ग्रन्थ प्रधान और गौण दोनों स्रोतों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। उदाहरण के लिये, यद्यपि आत्म-कथा प्रधान स्रोतों की श्रेणी में आती है परन्तु

कभी-कभी आत्मकथाओं की रचना स्मृति के आधार पर काफी अन्तराल के बाद की जाती है तथा लिख समय गौण स्रोतों की भी सहायता ले ली जाती है। इसलिये आत्मकथा प्रधान और गौण दोनों ही स्रोतों की श्रे में आ जाती है।

प्रधान स्रोत निम्नलिखित हैं—

(1) **समकालीन अभिलेख** (Contemporary Inscriptions)—समकालीन अभिलेखों श्रेणी में अनुदेश, सरकारी दस्तावेज, भूमि अनुदान सम्बन्धी आदेश, नियुक्ति सूचनायें, राजाज्ञायें, मंत्रालय किसी राजदूत को भेजे हुए आदेश आदि आते हैं। प्रो० **गोटचाक** के शब्दों में, "समकालीन अभिलेख दस्तावेज हैं जिसमें सम्बन्धित व्यक्ति को अपने कार्य सम्पादन के लिये अनुदेश दिये जाते हैं।" इन अभिले का महत्व इस दृष्टिकोण से भी है कि इनमें भूल, जालसाजी अथवा छल-प्रपंच की सम्भावना कम रहती परन्तु फिर भी उनकी विषय-वस्तु को जैसे का तैसा मान लेने से पहले अन्य स्रोतों के माध्यम से उनकी सत्य एवं प्रामाणिकता की जांच कर लेनी चाहिये। आशुलेखन (Stenographic) और ध्वनिलेख (Phonographic) रिकार्ड भी दो कारणों से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। एक तो उनमें वे ही बातें होती हैं कही जाती हैं। दूसरा इसलिये कि इनके द्वारा वक्ता की मन: स्थिति और किसी तथ्य पर उसके बल देने जानकारी होती है। नोटबुक, संस्मरण पत्र आदि भी इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी होते हैं तथा इन्हें प्रधान स्रोतों की श्रेणी में रक्खा जाता है। व्यापार तथा विधि जगत से सम्बन्धित कागजात जैसे हुंडी, वसी आदि भी महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करते हैं।

2. गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Reports)—सैनिक और राजनयिक संम्व (Military and Diplomatic Despatches) गोपनीय प्रतिवेदन की श्रेणी में आते हैं। इन्हें समकाल दस्तावेजों की अपेक्षा कम विश्वसनीय माना जाता है। प्रत्रिका और दैनन्दिनी भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावे हैं। परन्तु दैनन्दिनी में एक समस्या यह है कि कभी-कभी यह प्रतिदिन लिखी जाने के स्थान पर बाद में स्मृ के आधार पर लिखी जाती है। इस कारण कभी-कभी कुछ तथ्य विस्मृत हो जाते हैं जिससे इसका महत्व अ प्रामाणिकता कम हो जाती है। व्यक्तिगत पत्र (Personal letters) भी इतिहास के विश्वसनीय स्रोत हैं। पत्र एक व्यक्ति के द्वारा परिवार के एक या कई सदस्यों को लिखे जाते हैं और इनमें सामान्यत: व्यक्तिगत ब लिखी होती हैं। व्यक्तिगत पत्रों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जवाहरलाल नेहरू के द्वारा इंदिरा गांधी लिखे गये पत्र (letters of father to a daughter)। परन्तु ऐसे पत्रों में यह भी सम्भावना बनी रहती कि सब बातें सच्ची न लिखी गई हों या कुछ कमियों अथवा कमजोरियों को छिपाया गया हो। इसलि ऐतिहासिक स्रोत के रूप में उनका प्रयोग करने में पहले उनकी सच्चाई की जाँच कर लेनी चाहिए।

3. सार्वजनिक प्रतिवेदन (Public Reports)—सार्वजनिक प्रतिवेदनों को कम विश्वसनीय मा जाता है क्योंकि ये सार्वजनिक लोगों के लिये होती हैं। सार्वजनिक प्रतिवेदन प्राय: तीन प्रकार के होते हैं। पहर समाचार पत्र, दूसरा संस्मरण या आत्मकथायें तथा तीसरा सरकार अथवा किसी व्यावसायिक घराने द सरकारी अथवा अधिकृत इतिहास—जहाँ तक समाचार-पत्रों का सम्बन्ध है उनमें छपे समाचारों व विश्वसनीयता इसकी ऐजेन्सी अथवा समाचार पत्र के स्तर पर निर्भर है। कभी-कभी किसी स्तरीय समाचार प में छपा भ्रांतिपूर्ण संवाद महत्वपूर्ण हो जाता है तो कभी-कभी कोई सच्चा संवाद किसी कम विश्वसनी समाचार पत्र में प्रकाशित होने के कारण उतना विश्वसनीय नहीं माना जाता। जब तक समाचार पत्रों के अप

विशेष संवाददाता नहीं होते थे तब तक वे एक-दूसरे की नकल करते थे। आजकल समाचार-पत्रों के मालिक बड़े-बड़े व्यावसायिक घराने हैं जिनके अपने निहित स्वार्थ होते हैं। संस्मरणों और आत्मकथाओं का लेखन यदि स्मृति के आधार पर किया जाता है तो उनकी भी विश्वसनीयता संदेहास्पद हो जाती है। तीसरी श्रेणी में आते हैं सरकार अथवा किसी व्यावसायिक घराने का सरकारी अथवा अधिकृत इतिहास। प्राय: ऐसे इतिहास सरकारी रिकार्ड पर आधारित होते हैं। इस प्रकार का इतिहास लिखने के लिये इतिहासकार नियुक्त किये जाते हैं जिनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत नहीं करेंगे। परन्तु कभी-कभी वे जनमत को ध्यान में रखते हुए अथवा हिंसा अथवा साम्प्रदायिकता बढ़ जाने के डर से बहुत सारी घटनाओं को छिपा जाते हैं। इसलिये उनकी रचनाओं को भी सावधानी से पढ़ा जाना चाहिये।

4. प्रश्नावली (Questionnaires)—यह भी एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा किसी महत्वपूर्ण प्रश्न या समस्या पर लोगों के विचार जाने जाते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली डाक के द्वारा भी भेजी जा सकती है तथा व्यक्तियों से मिलकर भी प्रश्नावली पर उनके विचार जाने जा सकते हैं। एक स्रोत के रूप में प्रयोग करने के लिये इस प्रश्नावली में कई समस्यायें आती हैं। पहली तो यह कि प्रश्नावली कभी-कभी सावधानीपूर्वक तैयार नहीं की जाती। दूसरी बात यह है कि चूंकि प्रश्नावली का उत्तर पढ़ने के बाद ही दिया जाता है, इसलिये ये पढ़े-लिखे लागों के पास ही भेजी जानी चाहिये। तीसरी बात यह कि उत्तर देने वाले को यह विश्वास होना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता वास्तव में इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने के लिये गम्भीर हैं। यदि इन बातों का ध्यान रक्खा जाए तो प्रश्नावली का भी एक शोधकर्ता के लिये प्राथमिक स्रोत के रूप अत्यधिक महत्व है।

5. सरकारी दस्तावेज (Government Documents)—विभिन्न विषयों पर सरकारी आंकड़े, जनगणना आदि इसी श्रेणी में आते हैं जिनको तैयार करने के लिये सरकार महत्वपूर्ण सांख्यिकी संकलित करवाती है। परन्तु कभी-कभी इनका संकलन स्वंय परिवेक्षकों के द्वारा नहीं करवा या जाता, कभी-कभी बाद में कुछ चीजें जोड़ दी जाती हैं तथा कभी-कभी प्रकाशन से पूर्व भाषणों को परिमार्जित कर दिया जाता है। ये कुछ कमियां हैं जो सरकारी दस्तावेजों के इतिहास लेखन के महत्व को कम कर सकती हैं।

6. जनमत (Public Opinion)— जनमत भी इतिहासकार के लेखन में उपयोगी है। जनमत संग्रह के अतिरिक्त जनमत की अभिव्यक्ति प्राय: सम्पादकीय सम्भाषणों, संपादक के नाम पत्र आदि से होती है। परन्तु बहुधा यह व्यक्तिगत विचार हो सकते हैं जिनसे जनमत का अंदाजा लगाना उचित नहीं है। इसलिये उनकी भी सत्यता की जांच अन्य स्रोतों से करने के बाद ही इतिहासकार के द्वारा इनका प्रयोग किया जाना चाहिये।

7. साहित्य (literature)—साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्यकार भी अपने लेखन के माध्यम से समाज की आर्थिक-सामाजिक स्थितियों को उजागर करता है। उदाहरण के लिये प्रेमचन्द के समस्त उपन्यासों में गरीब किसान की आर्थिक दुर्दशा तथा महाजनों के शोषण एवं जागीरदारों के अत्याचारों का वर्णन है। इसी प्रकार चार्ल्स डिकिन्स के उपन्यासों में 19 वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड के सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है। परन्तु साहित्यकार कभी-कभी कल्पनाओं की लहर में बह जाता है और बहुत सारे ऐसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर देता है जिनमें से सत्य को ढूंढ पाना कठिन हो जाता है। इसलिये साहित्यिक रचनाओं को भी ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में इस्तेमाल करने से पहले इतिहासकारों को अन्य स्रोतों से पहले

पुष्टि कर लेनी चाहिये। इस सम्बन्ध में मारविक का कथन उचित ही लगता है,"इतिहासकार किसी युग विशे के काल्पनिक साहित्य की उपेक्षा भी नहीं कर सकता और न उस पर अनन्य रूप से विश्वास ही कर सकत है।"

8. लोककथायें और लोकोक्तियां (Folk Stories and Proverbs)—लोककथायें औ लोकोक्तियां भी इतिहास से स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण हैं। इनमें रीति-रिवाजों, समाजिक परम्पराओं तथ किंवदंतियों को रक्खा जा सकता है। आल्हा-उदल तथा रानी लक्ष्मीबाई आदि के सम्बन्ध में प्रचलित अथव स्विस युद्ध के नायक विलियम टेल के लोकगीत प्रसिद्ध हैं। इनमें कुछ अतिशयोक्ति तो होती है परन्तु पूर्णतय कलोप कल्पित नहीं होती। इनसे एक इतिहासकार को उस युग के इतिहास की जानकारी में महत्वपूर्ण सहायत मिलती है। इनका उपयोग करने से पूर्व इतिहासकार को आख्यान तथा इतिहास में अन्तर समझ लेना चाहिये।

गौण स्रोत (Secondary Sources)—उपर्युक्त स्रोतों के अतिरिक्त गौण वृत्तान्त, अन्य मुद्रित सामग्री, सन्दर्भ ग्रन्थों का संकेत, उद्धारण आदि गौण स्रोतों की श्रेणी में आते हैं। कुछ मुद्रित सामग्री एवं पुस्तकें इतनी सत्यता के साथ लिखी होती हैं कि वे प्रधान स्रोतों से भी अधिक महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करती हैं। इतिहासकारों का यह दायित्व है कि वे किसी भी तथ्य को स्वीकार करने से पूर्व अलोचनात्मक ढंग से उसकी सत्यता की जांच कर लें। ऐसा करके वह सामग्री को अधिक उपयोगी और प्रामाणिक बना सकते हैं।

● प्रारम्भिक शोध कार्यविधि (Preliminary Research Operations)

शोध वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी नवीन विचार या ज्ञान के विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते हैं। यह एक ऐसा प्रयास है जिसमें सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से नवीन तथ्यों की खोज की जाती है अथवा जो पहले से ही ज्ञात अथवा स्थापित है उनके सन्दर्भ में नई अवधारणायें विकसित की जाती हैं। इसीलिये विद्वानों ने कहा है कि शोध नये निष्कर्षों तथा आंकड़ों के साथ पूर्व स्थापित ज्ञान के सम्बन्ध में एक नई विद्वत्तापूर्ण खोज है। इतिहासकारों तथा विद्वानों द्वारा लिखी गई प्रत्येक बात शोध की श्रेणी में नहीं आती। **बी० शेख अली** ने ऐतिहासिक शोध में निम्नलिखित में से एक अथवा तीनों क्रियाओं का होना आवश्यक बताया है।

1. नवीन तथ्यों का संकलन (Collection of new data)

2. पूर्वज्ञात तथ्यों की नवीन आख्या (Fresh interpretation of known data)

3. तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन (Subordination of the data to a principle)

नवीन तथ्यों के संकलन से सम्बन्धित शोध में शोधार्थी तथ्यों का संकलन करता है तथा उसके आधार पर उन नवीन तथ्यों को अपने शोध कार्य में समावेशित करता है। एक आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऐसे शोध कार्यों की प्राचीन भारतीय इतिहास के लिये बहुत अधिक आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि कुछ घटनाओं के बीच की कड़ियां गायब हैं, जिन्हें जोड़ने का कार्य शोध के माध्यम से किया जा सकता है। उदाहरण के लिये इतिहासकारों ने मौर्यकालीन स्तम्भों, चट्टानों, गुफाओं आदि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी तो एकत्रित कर

ली हैं परन्तु अभी भी बहुत कुछ बाकी है। नवीन तथ्यों का संकलन कर एक शोधार्थी इस कमी को पूरा कर सकता है।

दूसरे प्रकार का शोध आंकड़ों की व्याख्या से सम्बन्धित है। इसमें शोधार्थी पहले से ही ज्ञात तथ्यों अथवा ज्ञान भंडार की अपने हिसाब से पुनर्व्याख्या करता है तथा अपने कुछ निष्कर्ष भी प्रस्तुत करता है। यह शोधार्थी की अपनी बुद्धि, ज्ञान और विवेक पर निर्भर करता है कि विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करने के बाद उनका विश्लेषण किस प्रकार करे और किस प्रकार किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। शोधार्थी के लिये यह भी आवश्यक है कि वह इस सारे विश्लेषण में व्यक्तिनिष्ठता की अपेक्षा वस्तुनिष्ठता का अधिक ध्यान रक्खे तथा निष्कर्षों को सत्य के अधिकाधिक निकट लाने का प्रयास करे।

तीसरे प्रकार का शोध है जिसमें तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। यह शोध उपरोक्त दोनों प्रकार के शोधों की अपेक्षा कुछ कठिन है क्योंकि इसमें उच्च स्तर के मानसिक क्रिया-कलापों की आवश्यकता होती है। यह ज्ञान के संश्लेषण से सम्बन्धित शोध है जिसमें शोधार्थी प्राप्त तथ्यों तथा आँकड़ों के आधार पर कुछ निश्चित नियमों तथा सिद्धान्तों की व्याख्या करता है। अपने सम्पूर्ण ज्ञान का उपयोग करते हुए अपने मत को स्थापित करने के लिये शोधार्थी अपने कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

एक अच्छे शोधार्थी के गुण (Qualities of a Good Researcher)—जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति वकील, डॉक्टर या इंजीनियर नहीं हो सकता उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति एक इतिहासकार नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति इतिहासकार हो भी जाये तो यह आवश्यक नहीं कि वह एक अच्छा इतिहासकार हो ही जाये। एक इतिहासकार होने के लिये यह भी जरूरी नहीं कि उस व्यक्ति ने इतिहास का अध्ययन किया ही हो। कॉमटे, हीगेल और क्रोचे जैसे अनेक व्यक्तियों के उदाहरण हैं जिनका विषय इतिहास न होने के बावजूद भी जिन्होंने श्रेष्ठ इतिहासकारों के रूप में ख्याति प्राप्त की। इसीलिये आलोचनात्मक दृष्टिकोण, विश्लेषात्मक बुद्धि, मानसिक रूझान तथा कठिन परिश्रम की क्षमता आदि कुछ ऐसे गुण हैं जिनका होना एक शोधार्थी के लिये अत्यावश्यक है। हम विस्तार से शोधार्थी के लिये अपेक्षित गुणों की व्याख्या करेंगे।

1. बी०शेख अली के अनुसार एक शोधार्थी के लिये पहला गुण है श्रम से लगाव, विषय के प्रति रूचि तथा **कठिन परिश्रम** को आनन्दपूर्वक लगातार कर पाने की क्षमता। इतिहास का शोध घर के ड्राइंगरूम में अरामकुर्सी पर बैठ कर कर लेने वाला कार्य नहीं है। आवश्यक सामग्री की खोज, कुछ व्यक्तियों से मौलिक सामग्री जुटाना तथा सामग्री की खोज में जगह-जगह भटकना आदि कुछ समस्यायें हैं जो इतिहास के शोधार्थी के मार्ग में आती हैं। यह एक लम्बी और कष्टदायक प्रक्रिया है जिसमें समय, उर्जा और धन तीनों ही लगते हैं। टॉयनबी, विलियम जोन्स और विन्टरनित्ज ने इतिहास के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ की हैं उसमें उन्हें कितनी कठिनाई उठानी पड़ी होगी, अनुमान लगा पाना अत्यधिक कठिन है।

2. शोधार्थी में बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ कुछ **नैतिक गुण** भी होना आवश्यक है जैसे व्यक्तिगत ईमानदारी और नैतिक सत्यनिष्ठता (Personal honesty and moral integrity)। बी० शेख अली ने लिखा है कि कुछ लोग स्वाभाव से ही या तो बहुत अधिक आशावादी होते हैं या निराशवादी; या तो वे किसी तथ्य के विषय में अत्यधिक अतिशयोक्ति करते हैं या अवश्यकता से कम महत्व देते हैं; या वे किसी चीज की अत्यधिक प्रशंसा करते हैं या अत्यधिक निन्दा। इस प्रकार उनके विचारों में कहीं भी संतुलन नहीं होता। उनके

चिन्तन में हर समय विषयनिष्ठता बनी रहती है जिसके कारण किसी भी तथ्य के विषय में वह सही आकलन नहीं कर पाते। उनकी कल्पना की उड़ान उन्हें यथार्थता के धरातल पर टिकने नहीं देती। असावधानी के कारण गल्तियाँ प्रत्येक व्यक्ति से हो सकती हैं लेकिन बार-बार और निरन्तर गल्तियां एक शोधार्थी से अपेक्षित नहीं है।

3. एक अच्छे शोधार्थी में **शांतचित्तता, संयम** और **गम्भीरता** अत्यावश्यक है। कोई भी जल्दबाजी बहुत सारी त्रुटियों का कारण बन सकती है तथा शोधार्थी के सारे श्रम को बेकार कर देगी। इसीलिये धैर्य को एक शोधार्थी का मूलभूत गुण माना गया है। उसे हमेशा इस बात को ध्यान रखना चाहिये कि किसी काम को जल्दबाजी में अस्पष्ट रूप में प्रस्तुत करने से बेहतर है धैर्य के साथ, चाहे समय अधिक लग जाये, ठीक से पूरा करना। शोध कोई परीक्षा नहीं है जहां जल्दबाजी में समय पर प्रश्नों को पूरा करना है। एक सच्चे शोधार्थी को शांत तथा हमेशा चौकस रहना चाहिये तथा गम्भीर से गम्भीर समस्याओं के बीच विचलित नहीं होना चाहिये केवल तभी वह एक अच्छा शोधकार्य प्रस्तुत कर सकता है।

4. शोधार्थी के लिये एक अन्य आवश्यक गुण है उसकी **बौद्धिक क्षमता**। उसमें बुद्धि की तीव्रता अभिव्यक्ति की योग्यता तथा निर्णय-शक्ति होना अत्यावश्यक है। इन गुणों से ही वह जटिल समस्याओं और पहेलियों को सुलझा सकता है और छिपे तथ्यों को खोज सकता है। उसकी बुद्धि तीव्र और दृष्टि पैनी होनी चाहिये तथा विलक्षण बुद्धि होनी चाहिये। संक्षेप में उसमें समान्य बुद्धि की बहुतायत, उत्सुकता की भावना और खोज की इच्छा होनी चाहिये (An abundance of commonsense, a sense of curiosity and a spirit of inquiry).

5. शोधार्थी के लिये एक महत्वपूर्ण गुण है **शोध विधि का ज्ञान**। उपर्युक्त सारे गुण होने के बाद भी यदि शोधार्थी को शोध विधि का ज्ञान नहीं है तो वह व्यर्थ में समय खराब करता रहेगा तथा भटकता रहेगा। युवा शोधार्थी अपना समय एवं ऊर्जा खो दोंगें यदि उन्हें यह नहीं मालूम कि उन्हें क्या काम पहले करना है और किस तरह आगे बढ़ना है। अब इतिहास का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है तथा केवल कुछ राजा रानियों तथा युद्धों जैसी कुछ राजनीतिक घटनाओं का विवरण मात्र नहीं रह गया है वरन् मनुष्य के जीवन के समस्त क्षेत्रों में विकास एवं उपलब्धियों का आकलन भी है। इसलिये उसे मानचित्र बनाने की जानकारी रूपरेखा का ज्ञान, आंकड़ों का संकलन, प्रश्नावली तैयार करने की विधि तथा सर्वेक्षण आदि की विधि का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये। शोध की सही पद्धति का ज्ञान शोधार्थी का समय एवं ऊर्जा बचाता है तथा गुणवत्ता को सुनिश्चित करता है।

विषय का चयन (Selection of the Subject)—मानसिक तैयारी के बाद तथा स्वंय को शोध जैसे गंभीर कार्य के लिये तैय्यार करने के बाद शोधार्थी के लिये सबसे महत्पूर्ण काम है एक समुचित विषय का चयन। यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा बी० शेख अली ने शोध के लिये विषय के चयन की तुलना जीवन साथी चुनने से की है। चयन में जरा भी गड़बड़ी मुसीबतों तथा निराशाओं का कारण बनेगी। इसलिये विषय के चुनाव से पूर्व शोधार्थी को स्वंय से कुछ प्रश्न पूछने चाहिये तथा कुछ बातें सुनिश्चित कर लेनी चाहिये। पहला प्रश्न तो यह कि उसकी रुचि और रुझान क्या है? दूसरा यह कि इतिहास के किस पहलू में उसकी रुचि अधिक है—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक अथवा सांस्कृतिक ? इनमें से किस शाखा के प्रति वह सर्वाधिक न्याय कर पायेगा? वह इतिहास के किस काल-प्राचीन, मध्य अथवा आधुनिक काल पर

अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहेगा? क्या वह जिस विषय का चयन करने जा रहा है उससे सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है और यदि उपलब्ध है तो क्या एक ही स्थान पर उपलब्ध है या जगह-जगह बिखरी हुई है? क्या स्रोत सामग्री उस भाषा में उपलब्ध है जिसका उसे ज्ञान है या किसी अन्य भाषा अथवा भाषाओं में उपलब्ध है और यदि ऐसा है तो वह इसका समाधान किस प्रकार करेगा? इन तथा इन जैसे अन्य प्रश्न उसे स्वंय से पूछने चाहिये और उनके संतोषजनक उत्तर ढूंढने का प्रयास करना चाहिये। इसके साथ ही उसे यह भी जान लेना चाहिए कि जिस विषय का वह चयन करने जा रहा है उस पर पहले से ही बहुत अधिक कार्य तो नहीं हो चुका है। एक अत्यधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि विषय ऐसा होना चाहिये जिसमें उसकी रुचि शुरू से आखिर तक बनी रहे। ऐसा न हो कि किसी आवेश या भावुकता में आकर या किसी अन्य व्यक्ति के कहने पर विषय का चयन तो कर ले परन्तु बीच में ही ऊबने लगे और कार्य को अधूरा ही छोड़ दे। उसे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जिस विषय का वह चयन करे वह उसकी कार्य-सीमाओं में हो।

बी० शेख अली ने लिखा है कि अनेक शोधार्थी बिना इन समस्याओं पर विचार किये विषय का चयन कर लेते हैं। उन्हें यह भी नहीं आता कि किसी विषय को सीमाओं में किस प्रकार बांधना है। इसके लिये उन्होंने दो तरीके सुझाये हैं। पहला तो यह कि शोधार्थी को यह विश्वास होना चाहिये कि वह अपना कार्य यथोचित समय में पूरा कर सकता है। दूसरा, शोधार्थी को विषय की प्रकृति एवं क्षेत्र के विषय में थोड़ा-बहुत अनुमान अवश्य होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके लिये यह भी जान लेना श्रेयस्कर होगा कि वह अपने शोधकार्य के द्वारा क्या करना चाह रहा है। क्या वह नयी सूचनांए जोड़ना चाह रहा है, कोई नयी व्याख्या करने जा रहा है अथवा क्या वह कोई नया सिद्धान्त प्रस्तुत करने जा रहा है। जब तक शोधार्थी को अपने अध्ययन कार्य के प्रमुख उद्देश्य का बोध नहीं है तथा विभिन्न प्रकार की शोधों से वह परिचित नहीं है तब तक वह कुछ महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं कर पायेगा।

रूप-रेखा की तैयारी (Preparation of an outline)—विषय के चयन के बाद एक शोधार्थी के लिये आवश्यक है कि वह उस विषय की रूपरेखा तैयार करे। यह उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य का ढ़ांचा अथवा रूपरेखा (synopsis) होगी जो उसे उस शोध के विषय में धूमिल सा विचार प्रदान करेगी। इस रूपरेखा से उसे शोध-कार्य की सीमाओं का भी थोड़ा सा ज्ञान हो जाएगा। परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि यह रूपरेखा अंतिम नहीं होती है तथा इसमें कभी भी, जैसे-जैसे शोध कार्य में प्रगति होती जाए, आवश्यकतानुसार परिवर्तन या परिमार्जन किया जा सकता है। यह रूप-रेखा तो एक दिशा-निर्देश मात्र है जिसमें बंधे रहना शोधार्थी के लिये न तो आवश्यक है और न ही अपेक्षित। रूपरेखा बनाने के बाद उसे एक स्वरूप देने के लिये अध्यायों में विभाजित कर देना चाहिये तथा प्रत्येक अध्याय को एक शीर्षक दिया जाना चाहिये। बी०शेख अली के अनुसार विषय की रूपरेखा शरीर का एक कंकाल मात्र है जो जैसे-जैसे शोधार्थी अपना कार्य बढ़ाता रहता है वह अपना एक स्वरूप लेती रहती है (The outline is a bare skeleton of the whole body which takes shape as the research scholar proceeds to work on the main theme)।

कुछ उपयोगी धारणायें (Some useful concepts)—ऊपर बहुत सारे गुणों का होना एक अच्छे शोधार्थी के लिये आवश्यक बताया गया है, परन्तु एक निपुण शोधार्थी के लिये यह आवश्यक है कि उसे कुछ अवधारणाओं का भी ज्ञान हो। बी०शेख अली के अनुसार यह हैं—समीक्षा (Criticism), विश्लेषण

(Analysis), कल्पना (Imagination), संदेह (Doubt), निश्चय अथवा असंशय (Certitude) त
पूछताछ (Interrogation)। अब हम संक्षेप में इनके ऊपर विचार करेंगे।

इतिहास लेखन में **समीक्षा** शब्द का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह किसी कथन अथवा तथ्य
सत्यता को परखने की कसौटी है। यह एक ऐसा यन्त्र है जो सही और गलत तथा वास्तविक या जाली के ब
एक विभाजक रेखा खींचता है। यह गल्तियों तथा भ्रम को दूर करने तथा एक दस्तावेज की सत्यता अथ
प्रामाणिकता को निर्धारित करने का एक हथियार है। संक्षेप में यह ऐसी क्षमता है जो एक शोधार्थी को
निर्णय करने में सक्षम बनाती है कि जो कुछ कहा गया है या प्रस्तुत किया गया है वह किस सीमा तक सही है

विश्लेषण भी शोधकार्य का एक आवश्यक अंग है तथा समीक्षा का ही पूरक है। इतिहास केवल त
को एकत्रित करना मात्र ही नहीं है वरन् मूल्यांकन एवं व्याख्या के द्वारा उनके सही महत्व को सामने लाने
काम है। इस कार्य को करता है विश्लेषण। उदाहरण के लिये केवल यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि अशोक
युद्ध का परित्याग कर दिया, वरन् उसकी नीति का विस्तृत विश्लेषण ही अशोक की महानता को उजागर
पायेगा। इसी प्रकार **रूसो** का यह कथन कि 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है परन्तु सर्वत्र बंधनों से जकड़ा हु
है'' एक ऐसा कथन है जिसका पूर्ण विश्लेषण किये बिना कोई अर्थ ही नहीं है। इस प्रकार विश्लेष
ऐतिहासिक शोध विधि का एक अत्यन्त आवश्यक उपकरण है जिसके माध्यम से इतिहास का शोधार्थी कि
सिद्धान्त को स्थापित करने में समर्थ होता है।

कल्पना भी एक इतिहासकार अथवा शोधार्थी के लिये एक अत्यावश्यक उपकरण अथवा हथियार
इतिहास की प्रकृति कुछ ऐसी है कि कल्पना के बिना न तो किसी तथ्य का सही विश्लेषण किया जा सकत
और न ही समीक्षा। इतिहास के आंकड़े अपने आप में पूर्ण नहीं होते तथा उनमें कुछ महत्वपूर्ण बातें छूट ज
हैं। एक इतिहासकार अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा उन छूटी हुई कड़ियों को पूरा करता है। नेपोलियन बोना
एल्बा से क्यों भागकर आया, इसको केवल आंकड़ों के हिसाब से या प्राप्त तथ्यों के आधार पर सही परिप्रे
में नहीं समझा जा सकता। इसको एक इतिहासकार अपनी कल्पना के द्वारा ही समझ सकता है। परन्तु कल्
तर्क और कारण पर आधारित होनी चाहिये अन्यथा वह कल्पना की उड़ान बनकर रह जायेगी।

संदेह भी इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण हथियार है जिसके माध्यम से इतिहासकार स्वयं को गल
करने से बचाता है। इतिहासकार को प्रत्येक तथ्य को संदेह से देखना होता है क्योंकि जो तथ्य दिखाई देते हैं
जिस रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं वे वास्तव में वैसे होते नहीं है। उदाहरण के लिये प्राचीन अथवा मध्यकाल
दरबारी लेखकों अथवा चारणों के द्वारा लिखे गये विवरण विषयनिष्ठता से परिपूर्ण थे। अथवा समय-समय
राजनीतिक दलों के द्वारा जारी किये गये घोषणा पत्र या भारत में कार्यरत ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारि
द्वारा समय-समय पर ब्रिटेन में स्थित अंग्रेजी सरकार को भेजी गई रिपोर्ट। यदि इन सबको एक शोधार्थी सं
की दृष्टि से नहीं देखेगा और उनकी सत्यता या प्रामाणिकता की जांच किये बिना अपना निष्कर्ष नहीं निकाले
तब तक उसका विवरण सत्य के निकट नहीं पहुँच पायेगा।

निश्चय पर पहुँचना एक शोधार्थी का अंतिम लक्ष्य होता है। वह अपनी व्याख्यात्मक, समीक्षात्मक
विवरणात्मक योग्यता के आधार पर सत्य को स्थापित करने का प्रयास करता है। यद्यपि किसी अपराध
खोज करने वाले अथवा एक वैज्ञानकि के समान पूर्ण सत्य तक पहुँच पाना कभी-कभी सम्भव नहीं भी हो प

है परन्तु उसे यह प्रयास अवश्य करना चाहिये। प्रत्येक तथ्य को सफलतापूर्वक स्थापित कर पाने में पूर्ण सफलता मिलने पर भी इतिहासकार को अपने दृढ़ निश्चय के द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयास निरन्तर करते रहना चाहिये।

एक शोधार्थी यदि ऐतिहासिक पद्धति का अनुसरण करे तो वह सत्य के अधिकाधिक निकट पहुँच सकता है। इस कार्य में एक महत्वपूर्ण सहायक तत्व है **पूछताछ**। एक शोधार्थी के समक्ष अनेक प्रश्न आते हैं जिनके उत्तर खोजने की वह कोशिश करता है। विज्ञानों के समान ही ऐतिहासिक पद्धति के भी मूल में है जिज्ञासु मस्तिष्क, प्रश्न करने की क्षमता तथा समालोचनात्मक प्रवृत्ति। विज्ञान के समान इतिहास में सीधा प्रयोग करने तथा प्रयोगशाला में परीक्षण के द्वारा उनको प्रमाणित करने की सुविधा तो होती नहीं है, परन्तु एक अप्रत्यक्ष विधि है—पूछताछ की विधि—जिसके माध्यम से वह किसी घटना का निरीक्षण करके सत्यता को पुष्ट कर सकता है। घटनाओं को प्रमाणित करने के लिये पूछताछ की विधि भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

ग्रन्थ सन्दर्भ सूची (Bibliography)—विषय के चयन के बाद शोधार्थी का एक महत्वपूर्ण कार्य है ग्रन्थ सन्दर्भ सूची तैय्यार करना। इससे उसे उसके विषय पर उपलब्ध सामग्री के विषय में काफी अंदाजा हो जाता है। एक शोधार्थी के लिये अत्यधिक आवश्यक है कि वह प्रथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों की एक विस्तृत सूची तैयार करे। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ संदर्भ तैयार करने का कार्य एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि शोध करने के दौरान नये-नये ग्रन्थ सामने आते रहते हैं जिन्हें जब भी वह दिखाई दें सूची में जोड़ लेना चाहिये। परन्तु फिर भी यह आवश्यक है कि शोध कार्य शुरू करने से पहले यह सूची तैयार अवश्य कर ली जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची तैयार करने के लिये सबसे पहला और सर्वाधिक उपयोगी स्थान है पुस्तकालय। यहाँ पर एक शोधार्थी को अपने विषय से सम्बन्धित अधिक से अधिक ग्रन्थ उपलब्ध हो जाते हैं जिनकी वह सूची आराम से बना सकता है। इंटरनेट से प्राप्त सूचना भी संदर्भ ग्रन्थ सूची तैयार करने में अत्यधिक सहायक होती है। सन्दर्भ ग्रन्थ सूची तैय्यार करने में प्राथमिक से अधिक द्वितीयक स्रोत सहायक होते हैं क्योंकि उनमें उन बहुत सारे स्रोतों का संदर्भ होता है जिनकी सहायता उस शोधार्थी ने अपने शोध के दौरान ली थी।

ग्रन्थ सूची तैयार करने में शोधार्थी को **कार्ड प्रणाली** अपनानी चाहिये। जिस प्रकार एक पुस्तकालय में एक कैटलाग होता है और उसमें एक निश्चित आकार के कार्डों पर ग्रन्थों अथवा पत्रिकाओं का विवरण होता है, उसी प्रकार शोधार्थी को भी अपनी सदंर्भ ग्रन्थ सूची बनानी चाहिये। इन्हें वर्णमाला के क्रम में व्यवस्थित किया जाना चाहिये, जिसमें ग्रन्थ का शीर्षक, प्रकाशन का स्थान तथा प्रकाशन का वर्ष भी लिखा जाना चाहिये। पुस्तक के नाम को रेखांकित कर देना चाहिये, जिसका अर्थ है कि मुद्रण 'इटैलिक' में होगा। यदि इस पद्धति से ग्रन्थ सन्दर्भ सूची तैयार की जाती है तो समय-समय पर उसमें नये संदर्भ जोड़ना अत्यधिक आसान हो जाएगा।

इस प्रकार किसी शोध कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व एक शोधार्थी को अपने विषय की सीमाओं और क्षेत्र, सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची तैय्यार करना, विषय की रूपरेखा बनाना, ऐतिहासिक पद्धति को समझ लेना, सामग्री को व्यवस्थित करना तथा आवश्यक ऐतिहासिक उपकरणों आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाना चाहिये। इन सबके माध्यम से उसे उस कार्य की गम्भीरता का अनुमान हो जाएगा और वह यह भी समझ पायेगा कि उसको

समुचित रूप से पूरा करने के लिये कितने परिश्रम की आवश्यकता है। जैसा कि बी० शेख अली ने लिख
इस प्रकार एक चुनौतीपूर्ण दंगल में उतरने से पहले वह उसको जीतने की सारी क्षमतायें और कौशल
कर लेगा।

● विश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि (Analytical Research Operati

विषय का चयन, उसकी रूपरेखा तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची बनाने के बाद एक शोधकर्ता को य
भाँति समझ में आ जाता है अब उसे शोध के मुख्य कार्य की ओर प्रवृत्त होना है। उसके मस्तिष्क में आ
वाले कार्यों की एक तस्वीर बन जाती है। जैसा कि बी०शेख अली ने लिखा है कि अब उसको विच
क्रियान्वित करना है अथवा जो कंकाल उसने तैयार किया है उसमें उसको मांस-मज्जा प्रदान करना है
लिये उसको कुछ अलग-अलग कार्य करने हैं जिनमें से प्रथम है विश्लेषणात्मक कार्य-विधि। अब उसे
शोध कार्य के लिये नई सामग्री ही नहीं ढूंढनी है बल्कि उस सामग्री का निकट से परीक्षण भी करना
शल्य चिकित्सक से तुलना करते हुए विद्वान इतिहासकार ने लिखा है कि जिस प्रकार वह शरीर के
जानने के लिये मानव शरीर को खोलकर डाल देता है उसी प्रकार इतिहासकार समस्त दस्तावेजों को
प्रामाणिकता एवं सत्यता की जांच के लिये सामने खोलकर रख लेता है। उसका कार्य भी एक शल्य चि
की तरह नकारात्मक ही होता है क्योंकि जिस प्रकार वह मरीज के शरीर की असामान्यता (Abnorma
को दूर करके उसे समान्य स्थिति में लाता है उसी प्रकार ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा भी त्रुटियों का नि
करके सत्य को सबके समक्ष लाया जाता है।

सामग्री जुटाने के बाद शोधकर्ता का प्रथम दायित्व है सामग्री की विश्वसनीयता को परख लेना,
विश्लेषणात्मक कार्य प्रणाली है। तथ्यों की विश्वसनीयता को परखने के लिये दो प्रणाली अपनाई
हैं—एक है बाह्य आलोचना (External Criticism) या ग्रीक भाषा में जिसे स्वत: शोध
(Heuristics) कहा जाता है। दूसरी है आन्तरिक आलोचना (Internal Criticism) जिसे ग्रीक
व्याख्यात्मक आलोचना (Hermeneutics) कहा जाता है। इन दोनों विधियों के माध्यम से व्यवि
निष्कर्ष पर पहुँच पाता है कि प्रस्तुत विचार को एक तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है अथव
जिन घटनाओं का वर्णन हम दस्तवेजों में देखते हैं उनमें बहुधा वास्तविकता और सच्चाई नहीं होती क्यों
कभी-कभी तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किये जाते हैं या उनका मिथ्यानिरूपण (Misrepresentation)
जाता है। उनके ऊपर लगे हुए आवरण को हटा कर ही सही तस्वीर प्रस्तुत की जाती है। इस कार्य
उपकरण सहायता करते हैं— बाह्य आलोचना और आन्तरिक आलोचना।

बाह्य आलोचना—साधारण शब्दों में बाह्य आलोचना का अर्थ निरीक्षण के उस समूह से है
अन्तर्गत यथार्थ दस्तावेजों तथा उनमें उल्लिखित सामग्री की यथार्थता को खोजा जाता है तथा झूठे दस्तावे
उनमें वर्णित झूठे वृत्तान्तों को बाहर किया जाता है। इस प्रकार यह दस्तोवेजों तथा उनमें वर्णित तथ
विश्वसनीयता को प्रमाणित करने की एक मुख्य विधि है। दस्तावेजों का जाली होना अथवा जाली दस्
तैयार किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जाली दस्तावेज अनेक कारणों से बनाये जाते हैं। कभी
जाली दस्तावेज बनाने के पीछे उद्देश्य उन्हें बेचकर लाभ उठाना होता है तथा कभी दूसरों को धोख
अथवा सही लाभार्थी को उसके लाभ से वंचित करना होता है। बी०शेख अली ने लिखा है कि सरकार के

नियन्त्रण के बाद भी बड़ी मात्रा में जाली मुद्रा तैयार कर ली जाती है, तो जाली दस्तावेज तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। इतिहास में बहुत सारे जाली दस्तावेजों के उदाहरण हैं जैसे मध्य युग में बादशाहों के द्वारा दिये गये भूमि अनुदान अथवा संस्थाओं को दान में दिये गये सरकारी अनुदान से संबन्धित आंकड़े। इस प्रकार शोधकर्ता का प्रथम कर्तव्य है कि वह जिस भी दस्तावेज का प्रयोग करता है उसमें दी गई सूचनाओं की जाँच कर ले। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार एक नये नियुक्त राजदूत के प्रमाण पत्रों की जांच के बाद ही उसे कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

बाह्य आलोचना के द्वारा तीन प्रकार से कार्य किया जाता है। पहला तो यह है कि दस्तावेज एक व्यक्ति द्वारा लिखा गया है अथवा एक से अधिक। दूसरा उसके उद्भव के विषय में पता करना अर्थात इसकी रचना कहां हुई तथा यह किस स्थान पर स्थित है। तीसरा उस दस्तावेज की रचना का समय क्या है तथा यदि सम्भव हो तो उसके लिखे जाने की तिथि, माह एवं वर्ष का भी। यह समस्त जानकारी न केवल उस दस्तावेज की विश्वसनीयता की जानकारी के लिये उपयोगी है वरन् इनसे यह भी पता चल जाता है कि इनके लिखने का उद्देश्य क्या था। इन क्रियाओं से दस्तावेज के लिखने वाले के मनोविज्ञान का भी पता चलता है और यदि लेखक की विश्वसनीयता ही संदिग्ध है तो उसका लेखन तो स्वंय संदिग्ध हो जाता है। यदि दस्तावेज में उस लेखक का नाम उल्लिखित नहीं है तो यह पता करना शोधार्थी का अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है।

दस्तावेज की विश्वसनीयता को स्थापित करने के लिये जीवाश्म विज्ञान (Paleography) एवं पुरालेख शास्त्र (Epigraphy) की भी सहायता ली जा सकती है। जीवश्म विज्ञान के द्वारा हम यह आसानी से पता लगा सकते हैं कि वह दस्तावेज जाली है अथवा वास्तविक। पुरालेख शास्त्र के द्वारा यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि उसमें प्रयुक्त वर्णाक्षरों का तत्कालीन समय में प्रयोग होता था अथवा नहीं। इस प्रकार इन दोनों शास्त्रों की सहायता से किसी दस्तावेज की प्रामाणिकता एवं यथार्थता सिद्ध की जा सकती है।

दस्तावेजों की प्रमाणिकता को सिद्ध करने में आलोचनात्मक योग्यता अथवा पहुँच (Critical Scholarship) भी अत्यधिक सहायक होती हैं। 19 वीं शताब्दी में यूरोप में यह पद्धति अत्यधिक लोकप्रिय हुई क्योंकि यह एक वैज्ञानिक तरीका था। यह कुछ सीमा तक यांत्रिक (Mechanical) भी था क्योंकि इसमें भी दस्तावेज का परीक्षण कुछ निश्चित सिद्धान्तों और तकनीक के आधार पर किया जाता था। इसके माध्यम से व्यक्ति एक शोधकर्ता के लिये सारी सामग्री विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत कर देता था। जिससे उसका काम आसान हो जाता था।

इस प्रकार बाह्य आलोचना करने वाले विद्वान का दायित्व हो जाता है कि वह विभिन्न विधियों का प्रयोग करके तथ्यों की विश्वसनीयता, यथार्थता एवं प्रामाणिकता को सुनिश्चित करे। इसके लिये उसे उस दस्तावेज विशेष के लेखन के ढंग, उस समय की भाषा, महत्वपूर्ण स्थानों तथा उस काल विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इस विषय में विद्वानों ने लिखा है कि प्रत्येक दस्तावेज का अध्ययन उसके प्रकरणों अथवा विषयों के विश्लेषण के साथ आरम्भ होना चाहिये, जो लेखक के वास्तविक अर्थ को प्रमाणित करने के उद्देश्य को निश्चित करता है। यह विश्लेषण आरम्भिक शोध कार्य विधिक्रिया के समान सुस्पष्ट एवं स्वतन्त्र होना चाहिये।

आन्तरिक आलोचना—बाह्य आलोचना के बाद स्वाभाविक रूप से आन्तरिक आलोचना आ जो बाह्य आलोचना की अपेक्षा उच्चतर आलोचना है। बी०शेख अली ने लिखा है कि जब शरीर के ऊप ओर दर्द होता है तो हम उस पर बाम या कोई लेप लगा लेते हैं, परन्तु यदि शरीर के भीतर कोई रोग या द तो हमें डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिये। इसी प्रकार हमें किस दस्तावेज में कितना सत्य है तथा कितना अ यह जानने के लिये उसका अधिक सावधानी से परीक्षण करना चाहिये। ऐतिहासिक पद्धति में इसे व्याख्य आलोचना कहा जाता है। इसका मुख्य कार्य है यह देखना कि दस्तावेज में जो कुछ वर्णित है उसे सत्य मा सकता है अथवा नहीं। बाह्य आलोचक तो एक पत्र के प्राप्त होने पर यह देखता है कि वह लिफाफा कह कब तथा किसके द्वारा भेजा गया है, परन्तु आन्तरिक आलोचक इन बातों में समय नष्ट नहीं करता तथा प खोलकर उसमें लिखी गई बातों को पढ़ना शुरू कर देता है। चूंकि यह अधिक मौलिक तथा अधिक महत्व कार्य है, इसीलिये इसे उच्चतर अलोचना (Higher Criticism) कहा जाता है। यह वह धुरी है जिसके ओर सारी पद्धति घूमती है क्योंकि इसी सूचना के आधार पर समस्त ऐतिहासिक विवरण की पुनः संरचन जाती है।

आंतरिक आलोचना में सबसे पहला कार्य है—दस्तावेज में वर्णित विचारों का सूक्ष्मता से अध्य विश्लेषण के माध्यम से दस्तावेज में वर्णित समस्त विचारों को अलग-अलग कर दिया जाता है और उ सत्यता की जांच के लिये अलग-अलग कसौटियों पर कसा जाता है। इसमें सर्वाधिक ध्यान रखने योग्य यह है कि प्रत्येक तथ्य का विश्लेषण और परीक्षण अलग-अलग किया जाता है क्योंकि एक दस्तावेज में अ विचारों का वर्णन होता है जिनमें से कुछ सत्य हो सकते हैं और कुछ असत्य। इस प्रकार विश्लेषण आन्त आलोचना में अनिवार्य है और इसीलिये यह बाह्य आलोचना की अपेक्षा तकनीकी दृष्टि से अधिक जटिल

आन्तरिक आलोचना में दो प्रकार की क्रियायें होती हैं—पहली है दस्तावेज में वर्णित तथ्यों विश्लेषण, जिसे **सकारात्मक व्याख्यात्मक आलोचना** कहा जाता है। दूसरी है उन परिस्थितियों का विश्ले जिनमें उस दस्तावेज की रचना की गई थी। इसे **नकारात्मक व्याख्यात्मक आलोचना** कहा जाता है। बी० अली ने लिखा है कि सकारात्मक आलोचना का उद्देश्य है कि एक कथन के पीछे लेखक का वास्तविक उ क्या था जबकि नकारात्मक आलोचना के द्वारा इस बात की पुष्टि की जाती है कि जो कुछ लेखक ने कह वैसा वास्तव में हुआ भी था या नहीं। दूसरे शब्दों में सकारात्मक, विश्लेषणात्मक आलोचना का उद्देश्य लेखक के कथन के सही अर्थ एवं भावना को समझना तथा नकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना का उद्देश कथन में किसी भी त्रुटि की सम्भावना को दूर कर देना। आन्तरिक आलोचना की आवश्यकता इसलिये पड़त कि बहुत सारे दस्तावेज ऐसे लोगों के द्वारा लिखे जाते हैं जिनका उसके सम्बन्ध में अधूरा ज्ञान होता है य किसी पूर्वाग्रह से ग्रासित होते हैं अथवा उनका कोई व्यक्तिगत या स्वार्थपूर्ण उद्देश्य होता है। उदाहरण के । चन्दबरदायी, अमीर खुसरो एवं अबुल फजल द्वारा लिखे गये वृत्तान्तों को ले लें अथवा भारत में ईस्ट इंडि कम्पनी के अधिकारियों द्वारा ब्रिटिश सरकार को समय-समय पर भेजे गये विवरणों को ले लें । इन सबके प कोई न कोई व्यक्तिगत उद्देश्य अवश्य रहता था। इसलिये एक इतिहासकार का कार्य है उन दस्तावेजों अत्यधिक सावधानी से परीक्षण जो आधिकारिक अथवा प्रामाणिक दिखाई पड़ते हैं। त्रुटियों को ढूंढने तथा करने में आन्तरिक आलोचना उनकी मदद करती है।

सकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना (Positive Interpretative Criticism)— इस प्रकार की आलोचनाओं में विश्लेषण दो चरणों में होता है। पहले चरण में दस्तावेज की भाषा को देखा जाता है जिसका उद्देश्य होता है शाब्दिक अर्थ को समझना तथा दूसरा चरण है उसके वास्तविक अर्थ को समझना। किसी दस्तावेज को समझने के लिये विद्वान को उस भाषा का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है जिसमें वह दस्तावेज लिखा गया है। ऐतिहासिक सामग्री विभिन्न भाषाओं में लिखी होती है तथा प्रत्येक भाषा में शब्द का अर्थ कुछ-कुछ बदल जाता है। दूसरी बात एक ही शब्द का प्रयोग सन्दर्भ के अनुरूप भिन्न रूपों में किया जाता है। इसलिये किसी भाषा का सतही ज्ञान आलोचनाकर्ता को भ्रमित कर देगा। इसलिये सकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना में सबसे पहला कार्य है किसी भी दस्तावेज के शाब्दिक अर्थ या शब्दकोशीय अर्थ को समझना तथा दूसरा है उस दस्तावेज के विशेष अथवा वास्तविक अर्थ को समझना।

द्वितीय चरण में लेखक के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयास किया जाता है। दस्तावेज के लेखक के द्वारा बहुधा प्रतीकों, मुहावरों, कहावतों आदि का प्रयोग किया जाता है जिनमें वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाता है। अधिकांश साहित्यिक लेखकों, व्यक्तिगत पत्रों एवं धार्मिक ग्रन्थों के लेखक वास्तविक विचारों को सीधे-सीधे शब्दों में न कहकर परोक्ष रूप में प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिये रूसो के इस कथन कि 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है परन्तु सर्वत्र बेड़ियाँ में जकड़ा हुआ हुआ हैं' का यह मतलब बिल्कुल नहीं निकाल लेना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति की गर्दन में बेड़िया पड़ी हुई है। वास्तव में इस कथन के पीछे रूसो का उद्देश्य था स्वतन्त्रता के महत्व पर जोर देना तथा लोकतन्त्र अथवा किसी उदारवादी शासन की स्थापना का प्रतिपादन। दूसरा उदाहरण मांउटबेटन के उस कथन का दिया जा सकता है जिसमें उसने महात्मा गांधी को 'वन मैन आर्मी' कहा जिसमें उसका अर्थ यह बताना बिल्कुल नहीं था कि महात्मा गांधी की एक सेना थी जिसके वह एकमात्र सैनिक थे। इसी प्रकार पुराणों में वर्णित आख्यानों को ले लें जिनमें बहुत सारे वर्णन कल्पना की उड़ान से भरपूर हैं। यह वर्णन अपने आपमें महत्वपूर्ण भी हैं इसलिये इनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती, परन्तु इस महत्वपूर्ण सामग्री का सही उपयोग केवल तभी हो सकता है जब संस्कृत भाषा का अच्छी तरह ज्ञान हो। इसलिये इतिहास लेखन में भाषा का अच्छा ज्ञान ही नहीं वरन् उसमें दक्षता भी आवश्यक है; केवल तभी हम बिखरी हुई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री का सही प्रयोग कर सकते हैं।

आलोचना एक आसान कार्य नहीं है जिसके लिये कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता। यह तो एक कला है या ईश्वर की देन है। इसके लिये एक शोधार्थी को न केवल सावधान वरन् सचेत एवं जागरूक होकर दस्तावेजों का बारीकी से अध्ययन करना चाहिये। किसी कथन का शब्दार्थ निकाल लेने से ही काम नहीं चलेगा वरन् उसके अन्दर छिपे हुए भाव को भी समझना आवश्यक है। शब्दों के स्थान पर दस्तावेज लेखक की शैली तथा उस सन्दर्भ को समझना अधिक महत्वपूर्ण है जिससे वह कथन सम्बन्धित है।

सकारात्मक आलोचना में त्रुटियों की सम्भावनायें बहुत अधिक हैं इसलिये इसमें एक पद्धति और विधि का अनुसरण अत्यावश्यक है। बी० शेख अली ने लिखा है कि एक शोधार्थी को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि वह एक ऐसे मार्ग पर विचरण कर रहा है जहाँ पर कुछ ऐसे प्रतिवेदन बिखरे पड़े हैं जिनमें तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा गया है क्योंकि उनके लेखकों के कुछ निहित स्वार्थ थे। इसलिये इस आलोचना का प्रारम्भिक बिन्दु है संशय या संदेह, जो वास्तविक दस्तावेज के वास्तविक अर्थ को समझने के साथ-साथ धीरे-धीरे दूर

होते रहना चाहिये। इसलिये सकारात्मक अलोचना का प्रथम चरण है दस्तावेज के शब्दिक एवं वास्तविक को समझना। इस कार्य को पूरा करने के बाद ही शोधार्थी अगले चरण में प्रवेश करता है, जो है नकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना।

नकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना (Negative Interpretative Criticism)

शोधार्थी के लिये तीसरा चरण है नकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना। यह सारे मामले का मर्म है इसीलिये इसे उच्चतर अलोचना कहा जाता है। अन्य आलोचनाओं की अपेक्षा यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण विश्लेषण तथा विश्लेषणात्मक आलोचना के द्वारा हमें सिर्फ यह पता चलता है कि दस्तावेज के लेखक मस्तिष्क में क्या चल रहा था और वह किस प्रकार की सूचनायें हम तक पहुँचना चाह रहा था। परन्तु उ सोच को कौन से तत्व प्रभावित कर रहे थे उनके विषय में कोई सूचना नहीं देता। बी० शेख अली ने लिख कि वे हमें सिर्फ यह बताते हैं कि दस्तावेज का लेखक तथ्यों को किस रूप में प्रस्तुत करना चाहता था, यह कि उसने किस रूप में देखा था और यह तो बिल्कुल नहीं कि वह घटनायें घटित किस रूप में हुई थी। ये तीन पहलू हैं जिनपर सावधानी से विचार किया जाना चाहिये। पहला तो यह है कि लेखक किस रूप में प्र करना चाहता है, यद्यपि उसने जो देखा अथवा सुना था वह उससे भिन्न है जो वह बताना या दिखाना चाहत दूसरा उस दस्तावेज का लेखक जो प्रस्तुतकर्ता है वह तो पूरी सच्चाई से कर रहा है परन्तु उसका व वास्तविक घटना से बिल्कुल भिन्न है। तीसरा, लेखक जो कुछ कह रहा है और जो उसका विश्वास है वास्तव में सही हैं। इन तीनों ही स्थितियों में सत्य को ढूंढने के लिये नकारात्मक विश्लेषण अत्यधिक सह होता है क्योंकि हम दस्तावेज में वर्णित तथ्यों को समान्यत: वैसा का वैसा स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि हमा दस्तावेज लेखक के इरादे में कोई संशय ही नहीं करते। परन्तु यह मनोवृत्ति गलत है और इसी के कारण सारी त्रुटियां रह जाती हैं।

एक इतिहास के शोधार्थी को शुरूआत में ही प्रत्येक दस्तावेज तथा कथन को संशय से देखना च और तब तक सत्य नहीं मानना चाहिये जब तक वह उसका परीक्षण न कर लें। दूसरी बात, जो अत्य महत्वपूर्ण है, किसी दस्तावेज अथवा रचना में यदि कुछ बातें त्रुटिपूर्ण हैं तो उसके आधार पर उस दस्तावेज रचना में वर्णित समस्त तथ्यों को त्रुटिपूर्ण नहीं मान लेना चाहिये। उदाहरण के लिये यदि बाण भ जियाउद्दीन बरनी, अबुल फजल आदि के वर्णनों में कुछ त्रुटियां है तो उनके आधार पर हमें उस पूरे ग्रन्थ त्रुटिपूर्ण मानकर उसका तिरस्कार नहीं कर देना चाहिये। इसीलिये समस्त तथ्यों का अलग-अलग पर करके जो तथ्य सही लगें उन्हें स्वीकार करना चाहिये और जो परीक्षण से त्रुटिपूर्ण सिद्ध हों उन्हें अस्वीकार देना चाहिये।

नकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना की प्रक्रिया में दो समस्यायें आती हैं। पहली को कहा ग उत्तम आस्था अथवा उत्तम आशय की त्रुटियों तथा दूसरी को यथार्थता की त्रुटियां कहा गया है। अब हम दोनों का पृथक-पृथक परीक्षण करेंगे।

उत्तम आशय की त्रुटियां (Errors of good faith)—यह वो त्रुटियां हैं जो लेखक जा कर करता है और तथ्यों को जानबूझ कर तोड़ता-मरोड़ता है। वह सत्य को जानता है परन्तु उन्हें छिपाता है

अपने पूर्वाग्रहों के कारण उन्हें भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है। एक शोधकर्ता अपने मन में कुछ प्रश्न करके इस समस्या का समाधान ढूंढ सकता है। बी० शेख अली ने इन त्रुटियों के कुछ कारण बताये, जिनका हम नीचे उल्लेख करेंगे।

1. दस्तावेज, लेखक पाठकों को अपने लाभ के दृष्टिकोण से धोखा देना चाहता है। सरकारी दस्तावेजों अथवा दरबारी लेखकों के लेखन में यह त्रुटि सामान्यत: पाई जाती है। अमीर खुसरो, बर्नी, अबुल फजल, निजामी तथा ऐसे ही अन्य लेखक शासकों के आश्रित थे और दरबारों में रहते थे। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा और उपलब्धियों का अतिशयोक्ति वर्णन ही उनका उद्देश्य था क्योंकि उनकी प्रशंसा करना तथा उनकी कमियों को छुपाना ही उनके लिये लाभप्रद था। इस प्रकार उनके वर्णन में जो त्रुटियां हैं या उन्होंने जो गलत तथ्य प्रस्तुत किये हैं उनके पीछे उनका हित और स्वार्थ निहित था।

2. दूसरी स्थिति वह है जिसमें लेखक चाहते हुए भी सत्य नहीं लिख पाता क्योंकि वह कुछ परिस्थितियों से बाध्य होता है। उदाहरण के लिये कुछ लेखक यद्यपि व्यक्तिगत रूप से जाति व्यवस्था की कठोरता, बाल-हत्या, सती-प्रथा आदि कुरीतियों के विरुद्ध थे परन्तु स्वतन्त्र रूप से इनके विरुद्ध इस डर से नहीं लिख पाये कि कहीं जनमत उनके विरुद्ध न हो जाये। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक बहिष्कार के डर से अपने विश्वास और सोच के विरुद्ध लिखा।

3. लेखक की अपनी कुछ पसंद और नापसंद होती है और कुछ पूर्वाग्रह होते हैं, इसीलिये बहुत सारे लेखक कुछ व्यक्तियों और घटनाओं की जब प्रशंसा करते हैं तो उन्हें आसमान पर पहुँचा देते हैं और जब निन्दा करने में आते हैं तो उन्हें धरातल तक ले आते हैं। उदाहरण के लिये कुछ विद्वानों को अकबर में कोई त्रुटि नजर नहीं आई और औरंगजेब में कोई अच्छाई ही नजर नहीं आई। इसका एक दूसरा पक्ष भी है। एक ही घटना का वर्णन जब अलग-अलग राष्ट्रीयता के लोगों ने किया तो दोनों के वर्णन में पूरी भिन्नता है। उदाहरण के लिये 1857 की घटना ब्रिटिश इतिहासकारों के लिये एक सिपाही विद्रोह था परन्तु भारतीय इतिहासकारों के लिये स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम। इसी प्रकार ब्रिटिश इतिहासकारों के लिये क्लाइव एक नायक था जबकि भारतीय इतिहासकारों के लिये खलनायक और लुटेरा। इस प्रकार दोनों के ही वर्णन त्रुटिपूर्ण हैं।

4. कोई लेखक दम्भ के कारण भी सत्य को प्रस्तुत नहीं करता। यह दम्भ व्यक्तिगत भी हो सकता है अथवा सामूहिक भी। उदाहरण के लिये बहुत सारे विद्वानों ने कुछ जातियों की श्रेष्ठता का झूठा बखान किया है अथवा मध्यकाल के कुछ उत्साही इतिहासकारों ने अपने आश्रयदाता शासकों के हिन्दुओं पर अत्याचारों और हिन्दू विरोधी कार्यों की अत्यधिक प्रशंसा की है, चाहे इस्लाम इसकी इजाजत न भी देता और चाहे उन शासकों ने वे सब कार्य किये हों या ना भी किये हों। वर्तमान में घटित होने वाली घटनाओं के आधार पर भी इसकी पुष्टि की जा सकती है। बहुत सारे आंतकवादी संगठन कुछ आतंकवादी घटनाओं का दायित्व सिर्फ अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये अपने ऊपर ले लेते हैं चाहे उन्होंने वह कार्य न भी किया हो।

5. कभी-कभी जनसामान्य को खुश करने के दृष्टिकोण से भी लेखक सही विचारों के स्थान पर उनको खुश करने के लिये बहुत कुछ लिखता है। देशभक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर भी लेखक कभी-कभी कुछ कमियों को नजरअंदाज कर देता है तथा कुछ गुणों को जरूरत से ज्यादा महत्व देता है। उदाहरण के लिये एक अंग्रेज को अपने देश की राजनैतिक संस्थाओं में सब अच्छाइयां नजर आती हैं जबकि दूसरे देश की राजनैतिक

संस्थाओं की अच्छाइयों के लिये वह आंखे बंद कर लेता है। बहुत सारे ब्रिटिश इतिहासकार ब्रिटिश शास भारतीयों के लिये वरदान सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इसलिये एक शोधार्थी का यह कर्तव्य हो जाता वह विवरण को देखते समय उसके लेखक के विषय में जानकारी प्राप्त कर ले।

6. कुछ लेखक अपनी साहित्यिक कुशलता से पढ़ने वाले को खुश करने का प्रयास करते हैं। वे विवरण को मुहावरेदार भाषा, लोकोक्तियों तथा आकर्षक वर्णन से इतना भर देते हैं कि तथ्य छिप ज पुनर्जागरण काल के कुछ लेखक तथा मध्ययुग के कल्हण और अमीर खुसरो ऐसे ही इतिहासकारों में अ इसलिये नाटकीयता और मनोहारी वर्णनों को हमें अविश्वास की दृष्टि से देखना चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त कुछ ऐसे दोष हैं जिन्हें सदाशयता से की गई त्रुटियों की श्रेणी में रखा जा शोधार्थी अगर अपने मन में लेखक के उद्देश्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करे तो वह इनके उत्तर ढूंढ क विवरण की यथार्थता तक पहुँच सकता है।

यथार्थता की त्रुटियां (Errors of Accuracy)— ऊपर जिन त्रुटियों का उल्लेख किया उनमें लेखक जानबूझकर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है, परन्तु यहाँ पर लेखक की ईमानदार सत्यनिष्ठता में कोई संदेह की गुंजायश नहीं होती। यहाँ पर समस्या यह है कि लेखक की सूचना के स्र दोषपूर्ण हैं, इसलिये लेखन में पूरी ईमानदारी होने के बाद भी वह अपने पाठकों तक गलत सूचना को ही करता है। बी०शेख अली ने लिखा है कि इन त्रुटियों को निम्नलिखित प्रश्नों के माध्यम से खोजा जा है—

1. सबसे पहला प्रश्न यह किया जाये कि जिस घटना का वर्णन किया गया है उसको लेखक ने देखा था या दूसरों के द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर लिख रहा है। यदि दूसरों की सूचनाओं के पर लिख रहा है तो त्रुटियों की सम्भावना अधिक रहती है। यह दोष उन दरबारी इतिहासकारों के वर्णनों मे अधिक पाया जाता है जिन्होंने प्राप्त सूचनाओं के आधार पर युद्ध की घटनाओं का वर्णन किया है।

2. यदि लेखक घटनाओं का स्वंय प्रत्यक्षदर्शी था तब क्या वह असामान्य परिस्थितियों में वृत्तान्त रहा है। आशय यह है कि या तो वह घटना को ठीक से देख-नहीं पाया या यदि ठीक से देखा भी है तो व घटना का वर्णन किसी दबाव, डर या किसी पूर्वाग्रह से ग्रासित होकर कर रहा है। इसलिये इरादे ठीक ह बाद भी उसके वर्णन में त्रुटि अवश्य होगी।

3. कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ व्यक्तियों में कुछ शरीरिक कमियां होती हैं या अपनी आद कारण चीजों को ध्यान से नहीं देखते, कुछ की उपेक्षा कर देते हैं या कुछ को तोड़-मोड़कर प्रस्तुत क इसलिये यह देखने के लिये कि उनके वृत्तान्त सही हैं या गलत अन्य स्रोतों से पुष्टि कर लेनी चाहि

4. कुछ लेखकों के ऊपर उनकी सोच, सिद्धान्त अथवा पूर्वाग्रह इतने हावी होते हैं कि उनके वर वही सब हावी हो जाते हैं। उदाहरण के लिये कार्ल मार्क्स को ले लें जिसने सम्पूर्ण इतिहास की व आर्थिक सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से ही की। इसलिये इरादा ठीक होते हुए भी उसका वर्णन त्रुटिपूर्ण ह

5. कभी-कभी लेखक स्वयं देखी गई घटनाओं का वृत्तान्त काफी अन्तराल के बाद लिखता है। ऐसे में बहुत सारे महत्वपूर्ण तथ्यों के विस्मृत हो जाने का संदेह बना रहता है। इसलिये शोधकर्ता को इनका अर्थ निकालते समय अधिक सावधानी बरतनी चाहिये।

उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक ऐतिहासिक दस्तावेज को विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में न तो स्वीकार किया जा सकता है और न ही किया जाना चाहिये। ऐतिहासिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता की पुष्टि के लिये उनका विविध पद्धतियों से परीक्षण अनिवार्य है। सत्य को प्रस्तुत करने की अनिच्छा, चाहे वह स्वेच्छा से की जाये अथवा अज्ञानवश, त्रुटियों का कारण बनती है। ऊपर जो तरीके बताये गये हैं उन सबके माध्यम से जांच करके ही किसी दसतावेज में उल्लिखित एक या समस्त तथ्यों की विश्वसनीयता को स्वीकार किया जाना चाहिये।

● संश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि (Synthetic Research Operations)

ऐतिहासिक संश्लेषण से तात्पर्य है वृत्तान्त में दिये गये विभिन्न तथ्यों के अर्थों को मिलाना, कारण बताना, व्याख्या करना तथा अभिलेखों का वर्णन करना। **मार्विक** ने लिखा है कि सामग्री को एकत्रित करने के पश्चात् इतिहासकार की भूमिका एक इंस्पेक्टर की रिपोर्ट से भिन्न होती है जो परीक्षण के दौर में अपनी सरकार को रिपोर्ट देता है अथवा एक संवाददाता जो अखबार के लिये नवीन उत्तेजनापूर्ण समाचारों की तैयारी के लिये लिखता है। इतिहासकार को विषम प्रकार की सामग्री का उपयोग इस प्रकार से करना चाहिये जिससे ऐतिहासिक तथ्य प्रकार में आ सकें।

संश्लेषण एक बौद्धिक क्रिया है जिसमें अनेक कठिनाईयां भी आती हैं क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों में एकरूपता नहीं होती है। इतिहासकार का कार्य होता है अलग-अलग तथ्यों की सत्यता का परीक्षण करना तथा उसके बाद उन्हें प्रस्तुत करना। यद्यपि तथ्यों को प्रस्तुत करने की विधि में अंतर होता है, फिर भी संश्लेषण को एक नवीन रूप में तथा व्यवस्थित तरीके से रखना चाहिये। यह कार्य इतिहासकार की क्षमता पर निर्भर करता है। इतिहासकार को तथ्यों एवं विचारों को प्राकृतिक रूप में तथा कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित कर लेना चाहिये जिससे पाठक को उनका अर्थ एवं महत्व दोनों आसानी से समझ में आ सके। प्रक्रिया और प्रणाली में तो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर हो सकता है, परन्तु उद्देश्य समान होना चाहिये—तथ्यों का सर्वाधिक बुद्धिमत्ता एवं रोचक रूप में प्रस्तुतीकरण। बी०शेख अली ने संश्लेषण कार्य विधि में इतिहासकार की तुलना एक मैकेनिक से की है जो एक आदर्श मशीन बनाने के लिये अनेक पुर्जों को व्यवस्थित करता है अथवा एक दुकानदार विभिन्न वस्तुएं खरीदकर अपनी दुकान में इस प्रकार सजाता है कि ग्राहकों को आसानी से दिख जायें। इसलिये तथ्यों का समूह बनाना अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है।

तथ्यों के समूह बनाने का कार्य एक कठिन कार्य है। इसमें सामूहिक विश्वसनीयता एक अत्यन्त आवश्यक तत्व है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई ऐसे तथ्य हैं जिनमें इतिहासकार को प्राप्त सूचना के स्रोत के आधार पर उचित भेद करना पड़ता है। ऐतिहासिक तथ्य विभिन्न प्रकार के होते हैं। विद्वान इन्हें एकत्रित करता है तथा उनमें से कम महत्वपूर्ण अथवा निरर्थक तथ्यों को हटा देता है। सभी तथ्यों को सामान्य तथ्यों की भांति रक्खा जाता है। संश्लेषण के द्वारा तथ्यों की व्याख्या इस प्रकार से की जाती है कि वे विषय वस्तु के अनुरूप हों। अभिलेखों के लिये मिलाने से पहले प्रत्येक तथ्य को समझा जाता है तथा इन अभिलेखों के जारी करने के

समय तथा स्थान का भी ध्यान रखा जाता है जिससे तथ्य का महत्व बना रहे। यहाँ पर यह ध्यान रखने योग्य है कि जब तक ऐतिहासिक तथ्यों का संश्लेषण न कर लिया जाये तब तक वे मात्र संभावित ही होते हैं। संश्लेषण में इतिहासकार उनका उपयोग करता है। इतिहासकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि संश्लेषण से पूर्व सभी तथ्यों की खोज तथा संकलन हो गया हो। विषय से सम्बन्धित न होने वाले तथ्यों को हटा दिया जाना चाहिये।

तथ्यों का समूह बनाने के लिये उनका वर्गीकरण किया जाना चाहिये जिसके लिये वर्गीकरण क निश्चित योजना आवश्यक है। बहुधा इतिहासकार प्राप्त सामग्री के संदेह में विलीन हो जाता है तथा आगे नह बढ़ पाता। आगे बढ़ने के लिये तरीका है प्रश्न और उत्तर का। शोधकर्ता को अपने संदेहों के आधार पर कुछ प्रश्न करने चाहिये तथा स्वयं उसके उत्तर खोजने चाहिये। तथ्यों का वर्गीकरण करने का सामान्य तरीका व्यक्ति तथा समय की परिस्थितियों पर आधारित होता है। यद्यपि मैकाले कालक्रमानुसार तथ्यों को व्यवस्थित करने क पद्धति को उचित नहीं मानता क्योंकि इस पद्धति में कुछ दोष होते हैं तथा ऐसा इतिहास पढ़ने योग्य नहीं होत परन्तु आधुनिक विद्वान इस विधि को सबसे अधिक संतोषजनक विधि मानते हैं क्योंकि इस प्रकार से तथ्यों क समूह कालक्रमानुसार बनाया जा सकता है। यदि उन्हें उचित सामग्री की व्यवस्था के अनुसार रखा जाये तो य आसान कार्य होता है।

संरचनात्मक विवेचन (Constructive Reasoning)—संश्लेषणात्मक कार्यविधि में एव और भी महत्वपूर्ण कार्य है जिसे संरचनात्मक विवेचन कहा जाता है। चूंकि जो ऐतिहासिक सामग्री हमें विभिन स्रोतों से प्राप्त होती है वह बहुधा पूर्ण नहीं होती तथा उसमें कुछ खाली स्थान रह जाते हैं। संरचनात्मक विवेच उन खाली स्थानों की पूर्ति करने का कार्य करता है। संरचनात्मक विवेचन की प्रक्रिया द्वारा एक इतिहासकार व जानने की कोशिश करता है कि जो उसे समस्त उपलब्ध स्रोतों के अध्ययन के बाद भी नहीं पता होता है। व जो जानकारी दस्तावेजों से प्राप्त होती है उसके आधार पर स्वयं कुछ अर्थ निकालने का प्रयास करता है त यदि वह विवेचन की सही पद्धति का प्रयोग करता है तो वह निष्कर्ष भी सही निकाल लेता है। परन्तु इस का पद्धति में समस्यायें भी आती हैं क्योंकि हम जो निष्कर्ष निकालने का प्रयास करते हैं वह किसी दस्तावेज प आधारित न होकर केवल मानवीय अनुभव पर आधारित होता है। इसीलिये विद्वानों का विचार है कि संरचात्मक विवेचन का प्रयोग पूरी सतर्कता से करना चाहिये तथा जब तक बहुत आवश्यक न हो तब तक इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जब इसका प्रयोग करें तब हमें स्वंय को इस बात से संतुष्ट कर लेना चाहिये कि इ सम्बन्ध में पूरी सावधानी बरत ली गई है। जब समस्त दस्तावेजों के गहन अध्ययन के बाद भी कोई संतोषजनक उत्तर न मिल पाये तभी इस पद्धति का प्रयोग करना चाहिये। एक शोधार्थी को एक न्यायाधीश की भांति सावधानी बरतनी चाहिये। जिस प्रकार न्यायाधीश किसी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं मानता जब तक उसक अपराध सिद्ध नहीं हो जाता, उसी प्रकार शोधार्थी को भी अपने विवेचन में जरा सा भी दोष यदि नजर आये त उसे कोई निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये।

विवेचन दो प्रकार के होते हैं—एक नकारात्मक विवेचन (Negative Reasoning) और दूस सकारात्मक विवेचन (Positive Reasoning)। नकारात्मक विवेचना में हम तब कोई निष्कर्ष निकालने क प्रयास करते हैं जब उसके विषय में दस्तावेज में कोई निश्चित संकेत नहीं होता। साधारण शब्दों में इसका अ हुआ कि जब दस्तावेज में कहीं पर भी एक तथ्य या घटना का उल्लेख नहीं होता है तब सामान्यत: यह म

लिया जाता है कि यह तथ्य था ही नहीं अथवा यह घटना ही नहीं हुई। हम यह मानकर चलते हैं कि यदि घटना घटित हुई होती तो उस घटना का उल्लेख अवश्य हुआ होता, परन्तु हम इस सम्भावना पर विचार नहीं करते कि घटना हुई थी परन्तु या तो किसी विशेष कारणवश उसका उल्लेख नहीं किया गया अथवा उसके प्रमाण स्वयं नष्ट हो गये हों अथवा किन्ही कारणों से नष्ट कर दिये गये हों। एक शोधार्थी को समस्त प्राप्त सामग्री के आधार पर यह संतुष्टि कर लेनी चाहिये कि यदि किसी तथ्य या घटना का उल्लेख नहीं किया गया है तो इसका अर्थ यह है कि यह घटना हुई ही नहीं।

दूसरा विवेचन है सकारात्मक विवेचन जो इतिहासकारों के लिये अधिक उपयोगी होता है, यद्यपि यह अधिक जटिल भी है। यह दस्तावेज में स्थापित कुछ तथ्यों से प्रारम्भ होता है तथा कुछ अन्य तथ्यों की कल्पना कर लेता है जिनका उस दस्तावेज में उल्लेख नहीं होता। थ्यूसीडाइड्स का यह कहना था कि ऐतिहासिक तथ्य एक-दूसरे से बड़े व्यवस्थित रूप में तथा स्थायी तौर पर जुड़े रहते हैं। इनमें इतिहासकार वर्तमान के तथ्यों का अवलोकन करके यह विश्वास करता है कि यह तथ्य भूतकाल में भी ऐसे ही थे। इस प्रकार वह एक तथ्य के आधार पर दूसरे तथ्यों के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालता है। परन्तु तथ्यों के आधार पर समान्यीकरण (Generalisation) करने से पहले हमें तथ्य की पूर्ण जानकारी हांसिल कर लेनी चाहिये। बहुत बार समान्यीकरण हमें सही निष्कर्ष पर नहीं ले जाता। उदाहरण के लिये यह मान लेना कि अत्यधिक असंतोष और कष्टों के कारण ही समस्त क्रांतिया हुई अथवा समस्त युद्ध मानवीय आंकाक्षाओं का ही परिणाम थे, उचित नहीं होगा। इसलिये यह शोधार्थी की बौद्धिक क्षमता पर निर्भर करता है कि वह उसका किस प्रकार प्रयोग करे। इस प्रकार सकारात्मक अथवा नकारात्मक विवेचन दोनों ही अत्यन्त उपयोगी हैं। परन्तु शोधार्थी को इनका प्रयोग अत्यधिक सावधानी एवं सर्तकता से करना चाहिये। इनका प्रयोग करने के बाद शोधार्थी को स्वंय को इस योग्य बना लेना चाहिये कि वह अब अपने शोध के उपसंहार की ओर बढ़ सके।

● उपसंहारात्मक शोध कार्यविधि (Concluding Research Operations)

विषय का चयन करने के बाद विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक कार्य-विधि को पूर्ण करने के पश्चात शोधार्थी उपसंहार की ओर बढ़ता है। उपसंहारात्मक कार्य-विधि विज्ञान की अपेक्षा कला अधिक है क्योंकि इसमें जो शोधार्थी के शोध का निचोड़ या निष्कर्ष है उसको पाठक के समक्ष सर्वाधिक आकर्षक और मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करना होता है। बी०शेख अली ने इतिहास लेखन की तुलना एक भवन के निर्माण से की है जिसमें पहले तो सामग्री एकत्रित की जाती है तथा तत्पश्चात उस सामग्री का सही उपयोग किया जाता है। विश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि के द्वारा पहला कार्य पूरा किया जाता है तथा संश्लेषणात्मक शोध कार्य विधि के द्वारा दूसरा। अब बच जाता है सारे प्रयास को अंतिम स्वरूप देना और वह है भवन की साज-सज्जा का। यह शोध का अंतिम चरण है, परन्तु इससे पूर्व इतिहासकार को एक और मौलिक कार्य सम्पन्न करना होता है। समस्त कार्य पूरा करने के बाद यदि हम आत्मसंतोष का अनुभव करना चाहते हैं तो हमारा भरसक प्रयत्न होना चाहिये उपसंहार को सुन्दर एवं आकर्षक बनाना। इतिहास का अंतिम अध्याय उपसंहार एवं निष्कर्ष से सम्बन्धित होता है जिसमें मोटे तौर पर शोधार्थी द्वारा किये गये सारे कार्य एवं परिश्रम का सार होता है। इस कार्य को एक **फार्मूला तैयार करना** (Framing a Formula) अथवा एक सामान्य नियम बनाना (Deducing a General Law) अथवा एक सिद्धान्त का निर्माण करना (Drawing a Principle or

उद्‌ग्रहा) भी कहा जाता है। इस कार्य की प्रकृति अत्यधिक जटिल है, परन्तु इसका महत्व भी बहुत अधिक क्योंकि किसी भी शोध कार्य के लिये यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना एक शासक के सिर पर ताज का।

उपसंहार एक प्रकार से सम्पूर्ण शोध कार्य का मूल्यांकन है तथा इससे पाठक को यह भी आभास जाता है कि शोधार्थी ने कितना परिश्रम तथा गहन अध्ययन किया है। यह एक साधारण क्रिया की अपेक्षा कठि है क्योंकि एतिहासिक तथ्यों के संकलन, चयन तथा उनको व्यवस्थित करने के बाद एक प्रकार से कसौटी कसा जाता है। इस काम को करने के लिये बुद्धिमत्ता एवं कौशल की अत्यधिक आवश्यकता होती है। इस द्वारा ही यह पता चलता है कि घटना से सम्बन्धित अनेक तथ्यों के बीच जो सम्बन्ध है वह कितना महत्वपू है। अन्य विज्ञानों के ही समान, जो जीवन से सम्बन्धित हैं, इतिहास में भी एक ऐसी विवरणात्मक विधि अथव सिद्धान्त की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा घटनाओं की प्रकृति की व्याख्या की जा सके।

जो सिद्धान्त हम बनायें वे किसी निश्चित स्वीकृत मानक के अनुरूप भी होने चाहिये। वे न तो बहुत छो हों न बहुत बड़े, क्योंकि अत्यधिक छोटे सिद्धान्त में अस्पष्टता या धुंधलापन रह जाएगा और यदि वह बहु लम्बा हुआ तो वह उबाऊ हो जाएगा। इसीलिये इसमें केवल अत्यावश्यक बिन्दुओं को ही समाहित किया जा तथा फालतू की बातों को निकाल दिया जाये।

अगली समस्या आती है कि नियम, सिद्धान्त अथवा 'फार्मूला' किस प्रकार बनाया जाये। इसमें आवश्यक है कि बहुत सारे तथ्यों को एक सामान्य नियम तक लाकर उनमें कुछ समानतायें स्थापित कर दी जाएँ तथा उ समस्त काल के लिये समरूपता बना दी जाये। यह तब हो सकता है जब हम कुछ प्रश्न बनायें और उनके उत्त की आपस में तुलना करें। इसके बाद उत्तरों का निचोड़ निकालें तथा उसके आधार पर हम एक फार्मूला तैय करें। इस सिद्धान्त अथवा फार्मूले के लिये सरल, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिये। सिद्धान बनाते समय पहले से ही हमारे दिमाग में वे तत्व स्पष्ट होने चाहिये जिनका इनमें समावेश किया जाना है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि हम सामान्य तथा विशिष्ट तथ्यों के बीच अन्तर कर सके। सामान्य तथ्यों से अ है वे घटनायें जिनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। हमें उनकी प्रकृति, प्रसार एवं अवधि को भी तय करना चाहिये एक ही फार्मूले में हमें उन सब अलग-अलग मामलों अथवा तथ्यों को संयुक्त कर देना चाहिये जो परस्प मिलते-जुलते हैं। यदि हमें किसी आदत या प्रकृति के सही क्षेत्र का निर्धारण करना है तो हमें यह ज्ञान ले चाहिये कि वह क्षेत्र कौन सा है जहाँ पर वह प्रवृत्ति सामान्य रूप से दिखाई पड़ती है। हमारे फार्मूले में उस आदत की समयावधि का भी संकेत होना चाहिये। हमें उन वर्गों का भी ज्ञान होना चाहिये जिन में ये आद अधिक पाई जाती हैं।

बी०शेख अली ने एक उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा कि यदि ह इस सम्बन्ध में किसी फार्मूले का निर्माण करना चाह रहे हैं कि कोई रीति-रिवाज या आदत कैसे विकसित हु तो हमें उन विभिन्न चरणों को ध्यान में रखना होगा जिनसे होकर वह गुजरी है। प्रत्येक विकास का एक निश्चित नमूना होता है और जिन चरणों से वह गुजरता है उनके कुछ सामान्य लक्षण होते हैं। प्रत्येक आदत की शुरूआत किसी एक व्यक्ति के बिना सोचे समझे क्रिया-कलापों से होती है। जब अन्य लोग भी इसका अनुकरण करते हैं तब यह एक आदत बन जाती है। धीरे-धीरे यह आदत एक परम्परा या रीति-रिवाज का रू धारण कर लेती है। कालान्तर में इसकी आलोचना होती है। एक शोधकर्ता को इसके विभिन्न चारणों में अंत

करने का ज्ञान होना चाहिये जिससे वह उसकी सही प्रकृति को समझ सके। एक क्षेत्र में जो आदतें या रीति-रिवाज हैं यदि वही दूसरे क्षेत्र में भी दिखाई पड़े तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मानव व्यवहार में सर्वत्र कुछ तथ्य समान्य होते हैं। इसी प्रक्रिया को हम अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में भी व्यवहार में ला सकते हैं। उदाहरण के लिये यदि हम यह जानना चाहे कि क्रांतिया क्यों होती हैं तो हमें प्रत्येक क्रांति के रिकार्ड सावधानी से देखने चाहिये और उस पृष्ठभूमि पर ध्यान देना चाहिये जिसमें क्रांति हुई। यदि हम यह पाते हैं कि समाज के समस्त वर्गों में व्याप्त असंतोष उस क्रांति के मूल में था तो हम इसी असंतोष के आधार पर फार्मूले का निर्माण कर सकते हैं।

विशिष्ट तथ्यों के सम्बन्ध में किसी फार्मूले का निर्माण अधिक कठिन कार्य है। इस कठिनाई को दूर करने का केवल एक ही तरीका है कि हम कुछ तथ्यों का चयन कर लें और उनका गहराई से अध्ययन करें। चुनाव करते समय हम केवल उन घटनाओं और व्यक्तियों को ही लें जो समाज में परिवर्तन लाने के महत्वपूर्ण कारक बने हैं या जिन्होंने समाज पर अपने व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव छोड़ा है। हमें एक बात से बचना चाहिये और वह है सामान्यीकरण (Generalisation)। हम यह मान लेते हैं कि कुछ व्यक्तियों की आदतें समस्त समाज की समान्य आदतें थी और वह एक पूरे काल में विद्यमान रहीं। इसके लिये हमें सैंपलिंग' का आश्रय लेना चाहिये।

उपसंहारात्मक कार्य-विधि का एक अन्य महत्वपूर्ण अंग है **उद्घाटन** अथवा **प्रतपादन (Exposition)**। सामन्य शब्दों में इसका अर्थ है ऐतिहासिक सामग्री को सर्वाधिक आकर्षक एवं मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करना। यह देखना आवश्यक है कि समस्त तथ्यों को इस रूप में व्यवस्थित कर दिया गया है कि समस्त कार्य एक साहित्य ग्रन्थ सा दिखाई पड़े। यह इतिहास लेखन का अंतिम चरण है तथा इसका सम्पादन अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिये । परन्तु इस कार्य-विधि को करने से पूर्व एक शोधार्थी के लिये यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि इस शोध कार्य को प्रारम्भ करने के पीछे उद्देश्य क्या था और वह कहां तक उस उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हुआ है। उसे स्वंय यह परीक्षण करना चाहिये कि क्या वह अपने शोध-कार्य के माध्यम से कोई बिल्कुल नई जानकारी दे पाने या किसी जानकारी की बिल्कुल नई व्याख्या कर पाने में सफल हुआ है। इससे पहले कि उसका शोधकार्य अन्य पाठकों या विद्वानों के हाथों मे जाये उसे स्वंय अपने कार्य का ईमानदारी से परीक्षण कर लेना चाहिये।

शुरूआत ही में शोधार्थी को अपने मने में यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि उसका शोध कार्य किस श्रेणी के अन्तर्गत आता है। यदि वह समझता है कि वह अपने शोध कार्य के द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में कुछ नई जानकारियाँ प्रस्तुत करने जा रहा है तो उसे यह देख लेना चाहिये कि कोई भी सामग्री बिना देखे हुए तो नहीं रह गई है। ऐतिहासिक सामग्री जगह-जगह बिखरी होती है, यहां तक विदेशों में भी, उसे उस सबको देख लेना चाहिये। आधुनिक समय में यह कार्य बहुत आसान हो गया है क्योंकि इंटरनेट के माध्यम से समस्त सामग्री बिना भाग-दौड़ किये एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। शोधार्थी को तो केवल यह सुनिश्चित करना है कि उसने समस्त **उपलब्ध सामग्री का पूर्ण इस्तेमाल** कर लिया है। समस्त सामग्री के इस्तेमाल के साथ-साथ जो एक अन्य आवश्यक बात है वह है उस सामग्री के अध्ययन के आधार पर तथ्यों की व्याख्या (Interpretation of facts)। इसके लिये आवश्यक है कि तथ्यों का अत्यधिक कुशलता और बुद्धिमत्ता से उपयोग किया जाये।

शोधार्थी के लिये लिखना प्रारम्भ करने से पहले कुछ अन्य बातों को भी ध्यान में रखना अत्यावश्यक सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उसके अपने मस्तिष्क में **स्पष्टता** होनी चाहिये। उसे तथ्यों को भली प्रक से समझ लेना चाहिये क्योंकि जब तथ्य उसे स्वयं स्पष्ट नहीं होंगे तब तक वह पाठकों के समक्ष स्पष्ट विवर कैसे प्रस्तुत कर सकेगा। आवश्यक यह है कि शोधार्थी अपनी पूरी बुद्धि, योग्यता और मानसिक क्षमताओं क विषय पर पूरी तरह केन्द्रित कर दे जिससे उसे विषय पूरी तरह स्पष्ट हो जाये।

किसी भी ग्रन्थ अथवा शोध-कार्य की उपयोगिता तभी है जब वह अधिक लोगों के द्वारा पढ़ा जा इसलिये आवश्यक है कि एक शोधकर्ता अपने द्वारा एकत्रित सामग्री को **साहित्यिक भाषा** में और मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करे जिससे अधिकाधिक पाठकों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो। तथ्यों को इस प्रक व्यवस्थित किया जाये कि एक तथ्य दूसरे से जुड़ा हुआ प्रतीत हो, एक वाक्य दूसरे से तथा हर अध्याय अप पिछले अध्याय से। यदि शोधकर्ता में इतनी क्षमता है कि वह अपने लेखन को एक उपन्यास की त **मनोरंजक** बना सके तो निश्चित रूप से उसका शोध कार्य अधिक उपयोगी होगा।

तकनीकी दृष्टिकोण से भी शोधार्थी को कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिये। इनमें अत्यधिक आवश्यक कथनों के सम्बन्ध में **प्रामाणिक संदर्भ** देना। उदाहरण के लिये यदि वह प्राचीन काल में अथवा मध्यकाल स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में यह टिप्पणी कर रहा है कि उन्हें समाज में बराबरी का स्थान नहीं था तो ऐ पढ़कर पाठक के मन में यह विचार आना स्वाभाविक है कि यह लेखक के अपने विचार हैं अथवा अ अधिकांश विद्वान भी यही मानते हैं। इसके लिये आवश्यक है उस मत के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचा के सन्दर्भ अवश्य प्रस्तुत किये जायें। टिप्पणियों के द्वारा यह सन्दर्भ दिये जा सकते हैं जिनमें पहले लेखक क नाम आये, उसके बाद उस ग्रन्थ का शीर्षक, फिर उसका संस्करण तथा फिर पृष्ठ संख्या। यदि किसी स्रो विशेष से बार-बार संदर्भ लिये जायें तो हर बार उस स्रोत का पूरा विवरण देने के स्थान पर उपरोक्त (ibic लिखना भी पर्याप्त होगा। *पाद टिप्पणियों* का एक लाभ और भी होता है कि उनसे पाठक अथवा शोध कार्य क परीक्षक को यह भी अनुमान हो जाता है कि शोधार्थी ने बहुत सारे स्रोतों का अध्ययन करने के बाद ही लेखा कार्य किया है।

इसके पश्चात *संदर्भ ग्रन्थ सूची* (Bibliography) दी जानी चाहिये जिसे अनेक शीर्षकों में विभाजि किया जाना चाहिये। सर्वप्रथम आती है प्रथमिक सामग्री या स्रोत जिसके अतंर्गत आते हैं मौलिक अथव अप्रकाशित सामग्री, आत्मकथायें, डायरी, समकालीन अभिलेख, कूटनीतिक पत्राचार, राजकीय अभिलेख सिक्के एवं मुद्रायें आदि। इसके पश्चात आते हैं द्वितीयक सामग्री जिसमें प्रमुखत: आते हैं प्रकाशित सामग्र जिन्हें उनके लेखकों के नामों क आधार पर वर्णमाला क्रमानुसार (Alphabetical Order) में प्रस्तुत किय जाना चाहिये। अंत में **नक्शे, चार्ट, सारणी** इत्यादि दिये जाना चाहिए। इसके पश्चात एक *इंडेक्स* दिया जान चाहिये जिसमें महत्वपूर्ण घटनाओं, व्यक्तियों, स्थानों आदि के पृष्ठों का उल्लेख हो जिससे पाठक जो भ सूचना लेना चाहता है वह उसे बिना कठिनाई के निर्दिष्ट स्थान पर मिल जाये।

एक शोध कार्य में **प्रस्तावना**, प्राक्कथन, विषय सारणी (table of contents) तथा एक परिचय भ होता है जो दिया तो प्रारम्भ में जाता है, परन्तु तैयार किया जाता है जब समस्त शोध कार्य समाप्त हो जाता है प्रस्तावना में उन कारणों का उल्लेख होता है जिनके कारण वह शोध कार्य प्रारम्भ किया गया तथा उन सभी दे

प्रति धन्यावाद ज्ञापन होता है जिनसे लेखक को अपने शोध कार्य में सहयोग अथवा सहायता मिली थी। परिचय में या तो उस विषय की पृष्ठभूमि का उल्लेख होता है जिस पर उस शोध में कार्य किया गया है अथवा उन समस्याओं का उल्लेख होता है जिन पर उसमें विचार किया गया है। परिचय में उन प्रश्नों को उठाया जाता है जिनका उत्तर उस शोध कार्य में दिया गया है। कुछ शोध कार्य समस्त कार्य का **सारांश** भी प्रस्तुत करते हैं। यह संक्षेप में उस कार्य का निचोड़ या सार होता है। इसके साथ ही वह शोध कार्य समाप्त हो जाता है। आम तौर पर उस पुस्तक के सम्बन्ध में प्राक्कथन (Foreword) किसी ऐसे महान विद्वान के द्वारा लिखा जाता है जो उस विषय से सम्बन्धित होता है। वह एक प्रकार से समस्त पुस्तक की समीक्षा करता है और उसके विशिष्ट लक्षणों की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

उपसंहार—इस प्रकार विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ शोध-कार्य अपना अंतिम स्वरूप ग्रहण करता है। यद्यपि विषय के चयन से लेकर सामग्री जुटाने तथा उसको व्यवस्थित करने आदि सभी में बहुत अधिक सावधानी, सूझबूझ और बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है, परन्तु सबसे ज्यादा सावधानी बरतनी चाहिये **निष्कर्ष** लिखने में। बहुत से पाठक केवल निष्कर्ष ही पढ़ते हैं। इसलिये निष्कर्ष बहुत स्पष्ट होना चाहिये तथा वे समस्त समस्याओं का समुचित उत्तर दे पाने में समर्थ होने चाहिये जो शोध कार्य में उठाई गई हैं। इसीलिये निष्कर्ष कई बार लिखे जाने चाहिये और प्रत्येक बार यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि जो कुछ शोधार्थी ने अपने शोध-कार्य में लिखा है उसका सही उत्तर निष्कर्ष दे पा रहे हैं।

इस प्रकार शोध कार्य लम्बे समय की कड़ी मेहनत, धैर्यपूर्ण विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा बुद्धिमता का मिला-जुला परिणाम होता है जिसे तैय्यार करते समय प्रत्येक चरण में अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिये। ऐसा करने पर ही एक अच्छा शोध-कार्य प्रस्तुत किया जा सकता है।

छात्र क्रिया कलाप (Student Activity)

1. प्राथमिक स्रोतों के प्रमुख भेद बताइये।
2. ऐतिहासिक स्रोत के रूप में साहित्य का महत्व बताइये।
3. गौण स्रोतों से आप क्या समझते हैं? समझाकर लिखिये।
4. प्रारम्भिक शोध-कार्य विधि को समझाकर लिखिये।
5. एक अच्छे शोधार्थी के गुणों पर प्रकाश डालिये।
6. दस्तावेजों की विश्वसनीयता को स्थापित करने के लिये किन विज्ञानों की सहायता ली जाती है? समझाकर लिखिये।

● सारांश (Summary)

- ऐतिहासिक पद्धति का अर्थ है वह तकनीक जिसके द्वारा अतीत की घटनाओं को उनके सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है। शोध एक ऐसा कार्य है जिसका उद्देश्य है नये तथ्यों को प्रकाश में लाना।
- ऐतिहासिक स्रोतों को दो भागों में विभाजित किया जाता है—प्रधान एव गौण। दोनों हो प्रकार के स्रोतों का अपना ही महत्व है। प्रधान स्रोतों की श्रेणी में समकालीन अभिलेख, गोपनीय प्रतिवेदन, सार्वजनिक

5. ग्रन्थ संदर्भ सूची किस प्रकार तैयार की जानी चाहिये? समझाकर लिखिये।
6. बाह्य आलोचना और आन्तरिक आलोचना को समझाकर लिखिये और उनका महत्व बताइये।
7. सकारात्मक विश्लेषणात्मक आलोचना पर एक टिप्पणी लिखिये।
8. उत्तम आशय की त्रुटियों के क्या कारण होते हैं? एक शोधार्थी किस प्रकार उनको दूर कर सकता है
9. यथार्थता की त्रुटियों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
10. संरचनात्मक विवेचन से आप क्या समझते हैं? नकारात्मक विवेचन और सकारात्मक विवेचन। समझाकर लिखिये।
11. 'उपसंहारात्मक कार्य-विधि का एक महत्वपूर्ण अंग है उद्घाटन अथवा प्रतिपादन।' समझाकर लिखि
12. एक शोध ग्रन्थ में निष्कर्ष का क्या महत्व होता है, समझाकर लिखिये।

अध्याय

4

भारतीय इतिहास की विषय-वस्तु

(THEMES IN INDIAN HISTORY)

संरचना

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय इतिहास में अर्थव्यवस्था (Economy in Indian History)

- कृषक व श्रमिक (Peasants and Labour)

भारतीय इतिहास में संस्कृति (Culture in Indian History)

- धर्म का अर्थ (Meaning of Religion)

मध्यकाल में धार्मिक आन्दोलन (Religious Movements in Medieval Period)

- वर्ण (Varna)

सारांश (Summary)

- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

● उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारतीय इतिहास में अर्थव्यवस्था को समझने में;
- कृषक और श्रमिकों की स्थितियों को समझने में;
- भारतीय इतिहास में संस्कृति को समझने में;
- धर्म के अर्थ को समझने में;
- मध्यकाल के धार्मिक आन्दोलनों को समझने में;
- प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था को समझने में।

● प्रस्तावना (Introduction)

इतिहास की विषय-वस्तु का स्वरूप सदैव परिवर्तनशील रहा है। प्रत्येक युग की सामाजिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों ने उसे प्रभावित किया है। इतिहास का अध्ययन केवल अतीत की घटनाओं और राजनीति के अध्ययन तक सीमित नहीं रह गया है अपितु नैतिक नियमों, सामाजिक संस्थाओं और आर्थिक क्रियाकलापों, सहित्य, कला, वर्ण, जाति एवं साहित्य तथा विज्ञान व तकनीकी भी उसके अध्ययन की महत्वपूर्ण विषय-वस्तु हैं। प्रारंभ में विद्वानों ने केवल अपने पूर्वजों और महापुरुषों की स्मृतियों की सुरक्षा हेतु इतिहास लेखन की ओर ध्यान दिया था परन्तु वर्तमान में उसकी विषय-वस्तु का स्वरूप अत्यन्त विस्तृत हो

गया है। इस कारण आधुनिक समय में मानव के जीवन से सम्बन्धित समस्त क्रिया-कलापों को इतिहास स्थान दिया जाने लगा है। **हेनरी मिरेन** ने लिखा है, "इतिहास समाज में निवास करने वाले मनुष्यों के कार्यों उपलब्धियों की कहानी है"। **प्रोफेसर ए. एल. राऊज** ने भी लिखा है, "इतिहास की विषय-वस्तु समाज सभी पक्षों का वर्णन है जिसमें भौगोलिक परिस्थिति, वातावरण, आर्थिक व्यवस्था, उद्योग, प्रशासन और एवं संस्कृति का वर्णन किया जाता है।"

● भारतीय इतिहास में अर्थव्यवस्था (Economy in Indian Histor

भारतीय इतिहास की आर्थिक विषय-वस्तु का स्वरूप स्थिर न होकर परिवर्तनशील रहा है। उ समुचित अध्ययन के लिए विभिन्न युगों की आर्थिक दशा का अध्ययन अनिवार्य है जिससे पाठक प्राचीन व से आधुनिक काल तक होने वाले समस्त आर्थिक क्रिया-कलापों एवं परिवर्तनों से भली-भाँति अवगत हो स

प्राचीन काल में आर्थिक स्थिति (Economic Condition in Ancient India) खुदाई में प्राप्त सामग्री के आधार पर यह आभास होता है कि सिन्धुकालीन लोगों की आर्थिक स्थिति अत सुदृढ़ थी। कृषि, पशुपालन, उद्योग-धन्धे, व्यापार उनकी अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे। व्यापार समुन्नत और कृषक भी सम्पन्न थे। वे विभिन्न अनाजों का उत्पादन करते थे, किन्तु **प्रो. ए. एल. बाशम** के अनुसार, चावल से अवगत नहीं थे। व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। व्यापारियों की आर्थिक स्थिति धनधान्य से परिपूर्ण थी और जनता आर्थिक अभावों से ग्रसित नहीं थी।

ऋग्वेद में भी **वैदिक काल** की आर्थिक स्थिति का वर्णन उपलब्ध होता है। इस काल में लोग अधिक गाँवों में निवास करते थे और कृषि उनका प्रमुख उद्यम था। अच्छी फसल की प्राप्ति हेतु वे ईश्वर का स्म करते थे। पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य ने आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में योगदान दिया। गाय के उनकी अगाध श्रद्धा थी और वह विनिमय का प्रमुख साधन भी थी। निष्क नामक स्वर्ण मुद्रा का भी इस यु वर्णन मिलता है जिससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि आर्थिक दृष्टि से वैदिक युग के लोगों की स्थि सुदृढ़ थी।

उत्तर वैदिक काल में भी अर्थव्यवस्था की मुख्य धुरी कृषि थी और इस युग में विभिन्न प्रका अनाजों के उत्पादन का वर्णन भी मिलता था। साथ ही पशुपालन और समुन्नत उद्योग और व्यापार के क इस काल के लोगों की आर्थिक दशा भी वैदिक काल के समान समृद्ध और धनधान्य से परिपूर्ण थी।

संगम युग में भी कृषि एवं व्यापार की स्थिति समुन्नत थी। संगम साहित्य में इस सम्बन्ध में पर्याप्त विस्तृत विवरण मिलते हैं। राज्य की समृद्धि में कृषि के विशेष योगदान को सभी इतिहासकारों ने मान्यता प्र की है। इस काल में यूनान के साथ होने वाले व्यापार का भी उल्लेख मिलता है। विभिन्न वस्तुओं आयात-निर्यात का भी वर्णन संगम साहित्य में विस्तृत रूप में उपलब्ध होता है। जहाजों द्वारा समुद्री यात्रा जहाज निर्माण के कार्य से भी यह प्रमाणित हो जाता है कि इस काल में भारत की आर्थिक स्थिति पर्याप्त स थी और विभिन्न कलाएँ विकासोन्मुख थीं।

प्रसिद्ध विद्वान **कौटिल्य** और यूनानी राजदूत **मेगस्थनीज** ने **मौर्यकाल** की आर्थिक स्थिति के सन्द विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार, इस काल में भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। मेगस्थ

एवं कौटिल्य ने अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस काल में कृषि लोगों के मुख्य व्यवसाय के रूप में आय का महत्वपूर्ण साधन थी और सरकार ने इसके विकास हेतु प्रत्येक सम्भव प्रयास किया था। मौर्यकाल में कृषि के साथ-साथ उद्योग-धन्धे और व्यापार भी पर्याप्त समुन्नत थे। आर्थिक समृद्धि के कारण नागरिकों को समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। उद्योग-धन्धे विकसित थे और विभिन्न वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था। विभिन्न समितियों के मौर्यकाल में गठित किये जाने के कारण व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हुआ था। आवागमन के साधनों की सुविधा के कारण विभिन्न देश परस्पर जुड़े हुए थे। व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। मौर्यकाल में समुद्री यात्राओं का वर्णन भी अनेक विद्वानों ने किया है। उस काल में भारत के सीरिया, यूनान, मिस्र, रोम आदि देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। कलिंग की विजय के पश्चात् सुदूर पूर्व से भी व्यापार होने लगा था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विनिमय के साधन के रूप में सुवर्ण, कार्षापण, माषक और काकणी आदि मुद्राओं के प्रचलन का उल्लेख किया है। इनका निर्माण सरकारी टकसाल में विभिन्न अधिकारियों के निरीक्षण में किया जाता था। मौर्यकाल में तत्कालीन व्यापार की उन्नति के सन्दर्भ में एक विद्वान ने लिखा है, "सुमधुर स्वादिष्ट सुरा, बहुमूल्य चाँदी के बर्तन, अनत:पुर में गाने वाले बालक व बालिकाएँ, सर्वोत्कृष्ट मलमल भारतीय व्यापार की मुख्य वस्तुएँ थीं"।

सातवाहन शासकों का काल भी आर्थिक दृष्टि से समृद्धि का युग था। इस काल में भारत व्यापार, उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में पर्याप्त समृद्ध था। नि:सन्देह कृषि आजीविका का मुख्य साधन थी, फिर भी व्यापारिक और औद्योगिक प्रगति की दृष्टि से यह युग अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इस काल में व्यपारियों ने अपने औद्योगिक संगठन स्थापित कर लिये थे जो आधुनिक बैंकों का कार्य भी सम्पादित करते थे। लेन-देन में चाँदी, सोना और ताँबे के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों व्यापार समुन्नत स्थिति में थे। यातायात और संचार साधनों के विकास ने आर्थिक समृद्धि और सम्पन्नता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

गुप्तकालीन आर्थिक व्यवस्था का विशद उल्लेख इतिहासकारों द्वारा किया गया है। कोई युग केवल तभी स्वर्णयुग कहा जा सकता है जब वहाँ की जनता सुखी व समृद्ध हो। समृद्धि के मूल आधार कृषि व उद्योग-धन्धे स्वीकार किये जाते हैं। इस काल के शासकों ने कला के विकास हेतु भी अत्यधिक धन व्यय किया और कला के सभी अंगों में सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया जो तत्कालीन आर्थिक समृद्धि में अभाव के कदाचित् सम्भव नहीं था। गुप्त शासकों का काल शान्ति और समृद्धि का काल था, जो व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। इस काल में आन्तरिक और वैदेशिक दोनों प्रकार के व्यापार का वर्णन उपलब्ध होता है। वस्तुत: इस समय में व्यापारिक स्थिति मौर्य युग की तुलना में अधिक सुदृढ़ हो गयी थी। व्यापारिक श्रेणियाँ भी पहले के समान बैंकों के दायित्व को निभाने में संलग्न थीं। विदेशी व्यापार मुख्यतया दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों से होता था। पाटलिपुत्र, वैशाली, बनारस, मथुरा, प्रयाग आदि प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त के शासन में सोने और चाँदी की मुद्राओं के प्रचलन का भी उल्लेख मिलता है। **फाह्यान** ने भी अपने वर्णन में गुप्त शासकों की आर्थिक सम्पन्नता और व्यापार व उद्योग की उन्नति का उल्लेख किया है, किन्तु परवर्ती गुप्त शासकों का काल आर्थिक दृष्टि से अवनति और गिरावट का काल था। इस काल में सोने और चाँदी के स्थान पर ताँबे की मुद्रा के प्रचलन से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि साम्राज्य की आर्थिक दशा जर्जर हो गयी थी।

बाण के 'हर्षचरित' और चीनी यात्री **ह्वेनसांग** के वर्णन से स्पष्ट है कि सम्राट हर्ष का काल आर्थिक समृद्धि का काल था। कृषि लोगों की आय का प्रमुख साधन थी और व्यापार और वाणिज्य अ उन्नत थे। हर्ष के शासन काल में भारत का वैदेशिक व्यापार जावा, चीन और तिब्बत तक फैला हुआ सिंचाई के साधनों की प्रचुरता के कारण कृषि उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही थी। बाण ने अपने वर्ण उज्जयिनी के लोगों के करोड़पति होने का वर्णन किया है जो हर्षवर्धन के काल की आर्थिक सम्पन्नत सजीव उदाहरण कहा जा सकता है। इस युग के मनुष्य अपने शासक के समान दयालु थे और अपने सह कार्यों और दान के लिए प्रसिद्ध थे। चीनी इतिहासकार ने अपने लेखन में यह भी वर्णत किया है कि लोग सामान्य स्थिति समृद्ध होने के कारण, वह अपने लेन-देन में अत्यन्त ईमानदार थे।

राजपूत काल भी आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ स्थिति में था। ग्रामीण जनता मुख्यतया कृषि पर निर्भर सिंचाई के साधन उन्नत थे। इस काल में विभिन्न व्यापारिक संगठनों का भी वर्णन उपलब्ध है जिन्हें श्रेणी जाता था। इन श्रेणियों का उद्योग और वाणिज्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान था। सामान के लाने औ जाने के लिए बैलगाड़ियों के साथ-साथ जहाजों के प्रयोग का भी वर्णन राजपूत काल में उपलब्ध होता है। स्पष्ट है कि आन्तरिक और वैदेशिक दोनों प्रकार का व्यापार उन्नत था और जनता सुखी व सम्पन्न

मध्यकाल में आर्थिक स्थिति (Economic Condition in Medieval India

मध्यकाल को दो भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम भाग दिल्ली सल्तनत और द्वितीय भाग मुगल का नाम से जाना जाता है।

मध्य युग धन-धान्य के लिए प्रख्यात था। धन की लालसा सभी विदेशी आक्रमणों का महत्वपूर्ण व माना जाता है। प्रथम काल अर्थात् **सल्तनत काल** की आर्थिक स्थिति का बहुत कम वर्णन तत्व इतिहासकारों ने किया है क्योंकि वह दरबार की शान-शौकत के वर्णन को अधिक महत्त्व देते थे। स सल्तनत काल के शासकों ने अपनी विलासिता और फिजूलखर्ची के कारण देश को आर्थिक रूप से जर्ज दिया। फिर भी देश की आर्थिक स्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। विदेशी यात्री इब्नबतूता, जो वर्ष भारत (आठ वर्ष दिल्ली दरबार) में रहा, ने लिखा है कि यहाँ की भूमि उपजाऊ थी, जिस कारण वर्ष फसलें बोई जाती थीं। फिरोज तुगलक के सुधारों के फलस्वरूप कृषि का और भी विकास हुआ। बाग कर और नहरों के निर्माण से भी फिरोज तुगलक ने राज्य की आय में वृद्धि की थी। कृषि के साथ-साथ व और उद्योग भी राज्य की आय के साधन थे परंतु भू-राजस्व राज्य ही आय का सर्वप्रमुख साधन था, जो अथवा अनाज किसी भी रूप में दिया जा सकता था। इस काल में आन्तरिक व विदेशी दोनों प्रकार के व का वर्णन मिलता है। विदेशी लेखकों के वृत्तांत से भी यह जानकारी प्राप्त होती है कि सल्तनत काल में व व उद्योग अत्यंत विकसित थे। भारत के व्यापारियों की ईमानदारी के कारण विदेशी व्यापारी उनसे स्थापित करने के इच्छुक रहते थे। विदेशी व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से किया जाता था।

सल्तनत काल में धन के बँटवारे में असमानता थी। धन का अधिकांश भाग कुछ लोगों के हाथ में हो गया था। फलत: अमीर वर्ग और शाही परिवार के सदस्य सुख-सुविधापूर्ण विलासितामय जीवन व करते थे जबकि साधारण लोग अभावों में जीने के लिए विवश थे। उन पर करों का अत्यधिक बोझ था। आय का 80% भाग कर के रूप में देने के बाद वह नारकीय जीवन जीते थे। अनाज उत्पन्न करने वाला क

तत्कालीन सुल्तानों की नीतियों के कारण स्वयं भूखा रहने के लिए बाध्य था। निस्संदेह शासकों ने जनता की सहायता के लिए अलग से विभाग खोल रखा था परंतु फिर भी यह सर्व ज्ञात है कि सल्तनत काल में पड़ने वाले अकालों का स्वरूप कितना भयानक था। इसलिए **अमीर खुसरो** का यह कथन उचित प्रतीत होता है, "शाही मुकुट में लगा हुआ प्रत्येक मोती गरीब किसान की आँख से गिरा हुआ झिलमिलाता रक्त बिन्दु प्रतीत होता था।"

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि निस्संदेह भारत एक समृद्ध देश था और यहाँ आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं, किन्तु धन का वितरण असमान था। विदेशी आक्रांताओं की लूट-मार के बाद भी लोगों का आर्थिक जीवन संतोषजनक था। *मार्कोपोलो, इब्नबतूता* और अन्य यात्रियों के वर्णन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। **बरनी** ने भी तत्कालीन व्यापारियों की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का उल्लेख अपनी पुस्तक 'तारीखे फिरोजशाही' में किया है।

विजयनगर साम्राज्य की स्थिति भी अत्यंत सुदृढ़ थी। **अब्दुर्रज्जाक** ने तत्कालीन आर्थिक समृद्धि की अत्यधिक प्रशंसा की है और सभी वर्ग के लोगों द्वारा आभूषण पहने जाने का वर्णन किया है। कृषि उन्नत थी तथा व्यापार और उद्योग विकसित थे। आंतरिक एवं वैदेशिक व्यापार के कारण व्यापारी एवं अन्य वर्ग के लोग सुखी व संपन्न जीवन व्यतीत करते थे। शासक स्वयं अपनी प्रजा की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते थे। फलत: देश आर्थिक संपन्नता की ओर अग्रसरित था।

दिल्ली सल्तनत के पतन के पश्चात भारत में **मुगल शासन** की स्थापना हुई जिन्होंने लगभग दो सौ वर्ष तक भारत में शासन किया। इस काल की आर्थिक स्थिति का स्वरूप भी शासकों की योग्यता और क्षमता के अनुसार समय-समय पर परिवर्तित होता रहा। प्रारंभिक मुगल शासक बाबर व हुमायूँ अपनी अस्थिर स्थिति के कारण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण कार्य नही कर सके, अत: तत्कालीन आर्थिक स्थिति के संबंध में बहुत कम वर्णन उपलब्ध है। **गुलबदन बेगम** ने अपने ग्रंथ में वस्तुओं के सस्ते होने का उल्लेख अवश्य किया है। बाबर के द्वारा 'तुजके बाबरी' में किया गया वर्णन भी पूर्णतया सच प्रतीत नहीं होता, परंतु अकबरकालीन सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का वर्णन कई साक्ष्यों में उपलब्ध है। **अबुल फजल** ने अपनी पुस्तक 'आइने अकबरी' में तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला है और **वी.ए.स्मिथ** ने उल्लेख किया है, "आधुनिक मजदूर की तुलना में अकबरकालीन मजूदर अधिक प्रसन्न था और उसे अधिक खाद्य सामग्री मिल सकती थी जिसका कारण अनाज के मूल्य में कमी थी।"

कृषक वर्ग सुखी और संपन्न था और खेती विकसित थी। व्यापार व वाणिज्य भी समुन्नत था। बड़े व्यापारी को 'सेठ' अथवा 'बोहरा' कहा जाता था और आवागमन तथा यातायात की सुविधाएँ भी पर्याप्त थीं। **बर्नियर** ने व्यापारियों की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है, "व्यापारी निर्धनता को प्रदर्शित करने का प्रयास करते थे क्योंकि उन्हें भय था कि उनकी दौलत उनसे छीन ली जा सकती है।" परंतु बर्नियर का वर्णन विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। वस्तुत: मुगल शासकों ने व्यापारियों और राजमार्गों की सुरक्षा हेतु कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे।

अकबर से औरंगजेब तक के सभी शासक समुद्री व्यापार में रुचि रखते थे। इस काल में यूरोप के देशों से आयात-निर्यात भी होता था। शासक अपनी विलासिता की पर्याप्त सामग्री विदेशों से मँगवाते थे। इस काल में

सूरत, बंगाल, मालाबार तट, खम्भात की खाड़ी और सिंध समुद्री व्यापार के प्रमुख केंद्र थे। देश में धन प्रचुर मात्रा में था और लोगों का आर्थिक जीवन खुशहाल था। देश में विभिन्न उद्योग-धंधों के स्थापित ह कारण देश आर्थिक दृष्टि से और अधिक सुदृढ़ हो गया था। इस काल में कपड़ा उद्योग अत्यंत विकसि **एडवर्ड टेरी** और **मोरलैण्ड** जैसे विद्वानों ने मुगल शासन के अंतर्गत लोगों की आर्थिक संपन्नता का किया है। भारत में समय-समय पर आने वाले यूरोप के यात्रियों हॉकिन्स, सर टमस रो, पीटर मुण्डी, मै और ट्रेवर्नियर आदि ने भी मुगलकालीन आर्थिक संपन्नता का उल्लेख अपने संस्मरणों में किया है।

शाहजहाँ के स्थापत्यकला पर किये गये अत्यधिक व्यय और औरंगजेब के निरंतर युद्धों में संलग्न कारण कुछ विद्वानों ने उन्हें मुगल शासन में आर्थिक पतन के लिए उत्तरदायी सिद्ध करने का प्रयास कि किंतु वस्तुस्थिति यह है कि देश में आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त रहा था और लोग खुशहाल थे। शाहजहाँ के काल में पड़ने वाले भयंकर अकाल को हम आर्थिक स्थिति के पतन का प्रमाण नहीं कह और न ही औरंगजेब इसके लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी था। वास्तव में अंग्रेजी शासन की स्थाप परिणामस्वरूप भारत आर्थिक रूप से दुर्बल हुआ था।

आधुनिक काल में आर्थिक स्थिति (Economic Condition in Mo India)—अंग्रेजों का भारत में प्रवेश एक व्यापारियों के दल के रूप में हुआ और अंतिम सम राजनीतिक सत्ता की स्थापना के बाद भी वह अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा में संलग्न रहे। मुगल साम्र पतन का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने भारत में व्यापारिक एकाधिकार के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व स्थापना कर ली और धीरे-धीरे अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा में वृद्धि करके देश में अपने शासन की स्थाप ली। भारतीय प्रशासन में उनकी रुचि का एकमात्र कारण इंग्लैंड के व्यापारिक हितों की सुरक्षा करना- इंग्लैण्ड के औद्योगिक विकास में भारतीय संसाधनों के प्रयोग द्वारा, उसे उत्तरोत्तर विकसित करने उ उन्मुख थे। उनके शासन काल की मुख्य विशेषता यह थी कि वे भारत का आर्थिक शोषण करके उसे बनाना चाहते थे। अत: उन्होंने भारत के परंपरागत आर्थिक ढाँचे को नष्ट कर दिया और इंग्लैण्ड के औ एवं व्यापारिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इससे **अंग्रेजी शासन** के दौरान भारत की संपूर्ण व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे भारत जो एक कृषि प्रधान देश था, औद्योगिक इंग्लै आर्थिक उपनिवेश बन कर रह गया। अंग्रेजों ने भारत के कुटीर उद्योगों में संलग्न कामगारों के प्रति 'उ **निष्कासन**' की नीति का अवलम्बन किया, जिसके परिणामस्वरूप वह न केवल विदेशी अपितु घरेलू में भी अत्यधिक पिछड़ गये।

भारत में अंग्रेजी कम्पनी ने कृषि के सुधार और आधुनिकीकरण की ओर भी कोई विशेष ध्य दिया। फलत: निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या, अत्यधिक लगान और ऋणग्रस्तता और गरीबी के कारण विकास अवरुद्ध हो गया और भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन हो जाने के कारण उत्पादन में आ गयी। 1858 ई. से 1947 ई. तक भारतीय उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ। अनेक नये कारख स्थापना हुई। सूती मिलों व जूट मिलों की संख्या 1905 ई. तक बढ़कर क्रमश: 206 व 36 हो गयी साथ-साथ अन्य उद्योग जिनमें सीमेंट, कागज, चीनी व शीशा आदि भी प्रमुख हैं, में भी विकास हुआ। विकास के बाद भी भारतीय उद्योग कठिनाइयों से ग्रसित रहे। सरकार की भेदभावपूर्ण नीति और न

संयन्त्रों के अभाव के कारण उद्योगपतियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। फलत: भारतीय जनता दिन-प्रतिदिन दरिद्र होती गयी। इस अवधि में पड़ने वाले अकालों ने भी देश की जनता को कष्ट सहने के लिए बाध्य किया और अनेक व्यक्ति असमय ही काल के गाल में समा गये।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत को उत्तराधिकार में अत्यंत जर्जर स्थिति प्राप्त हुई। ब्रिटिश शासन में आर्थिक संसाधनों का पहले ही दोहन किया जा चुका था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की आर्थिक स्थिति पटरी पर लाने के लिए भारत सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाये तथा 15 मार्च, 1950 ई. को **योजना आयोग** का गठन किया गया। **पंचवर्षीय योजनाओं** के माध्यम से आर्थिक समस्या के समाधान और अधिक पूँजी वाले उद्योगों की स्थापना की ओर भी इन योजनाओं के अंतर्गत प्रयास किये गये। साथ ही **कुटीर उद्योगों** को पुनर्जीवन प्रदान करने का भी यत्न किया गया। इससे देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई और आयात में कमी आयी। **'सामुदायिक विकास कार्यक्रमों'** और **'कृषि सहकारी समितियों'** ने भी अर्थव्यवस्था के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सरकार द्वारा निर्धनता को समाप्त करने के कोई साकारात्मक प्रयास न किये जाने के कारण, ये योजनाएँ वांछित फल नहीं दे सकीं। केंद्रीकरण और एकाधिकार की प्रवृत्ति भी भारतीय आर्थिक विकास में बाधा बनी रही।

स्वातंत्र्योत्तर काल में कृषि के उत्थान में भी इन योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उत्पादन में लगभग तीन प्रतिशत वार्षिक वृद्धि भी हुई जो चीन और जापान जैसे देशों की तुलना में अधिक थी, फिर भी यह उत्पादन देश की खाद्यान्न की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सका और हमें विदेशों से अनाज का आयात करने के लिए विवश होना पड़ा। खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता भारत में हरित क्रांति के बाद ही संभव हो सकी। इस समय में औद्योगिक विकास भी तीव्र गति से हुआ जिससे उपभोक्ता विभिन्न उद्योगों में पूर्ण आत्मनिर्भर तो नहीं हो सका किंतु उसकी दूसरे पर निर्भरता पर्याप्त कम हो गयी। विश्व व्यापार की गति धीमी होने के कारण 1996-97 में अर्थव्यवस्था में पुन: गिरावट आयी परंतु वर्तमान समय में **'उदारीकरण'** और **'वैश्वीकरण'** की प्रक्रिया को अपनाने के बाद देश की अर्थव्यवस्था में सुधार संभव हो पाया। **नीति आयोग** ने योजना आयोग का स्थान ले लिया और नित्य प्रति आर्थिक विकास के लिए नई-नई नीतियाँ बनाई जा रही हैं।

● कृषक व श्रमिक (Peasants and Labour)

प्राचीन काल से भारत के आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार कृषि ही रहा है। समयानुसार किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में भी परविर्तन होते रहे हैं, क्योंकि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के शासकों ने किसानों के प्रति अलग-अलग प्रकार की नीतियों का अवलम्बन किया था जिससे राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव किसानों पर पड़ना स्वाभाविक हो गया था। सिंधु सभ्यता से राजपूत युग तक किसानों की स्थिति का वर्णन ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है जो निम्न प्रकार है—

प्राचीन काल में कृषकों की दशा (Condition of Peasants in Ancient Period)—सिंधु सभ्यता के निवासी कृषि-कर्म करते थे तथा विभिन्न फसलों को उगाते थे। उनकी आर्थिक समृद्धि का प्रमुख आधार कृषि था। इस युग में कृषक सुखी व संपन्न थे। **वैदिक काल** में भी लोग कृषि कार्य करते थे। यह उनका प्रमुख उद्यम था। इस काल के किसानों की स्थिति भी संतोषजनक थी। संगम साहित्य से भी उस युग में किसानों द्वारा कृषि कार्य करने का वर्णन मिलता है। अत: स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में

किसान की देश के आर्थिक निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके द्वारा प्रदत्त लगान देश की आय व प्रमुख साधन था, इसलिए प्रत्येक शासक कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए अनेक प्रयास करता था।

मौर्यकालीन किसानों की स्थिति भी संतोषजनक थी, यद्यपि समस्त भूमि पर राज्य का अधिकार था। लगान के रूप में निरंतर सरकार को कुल उपज का एक-चौथाई भाग दिया करते थे। सिंचाई कर अदा कर किसान राज्य की नहरों का प्रयोग कर सकते थे। किसानों के सुख व हित के लिए शासक सदैव प्रयत्नशी रहते थे और उनकी प्रत्येक संभव सहायता भी करते थे। मौर्य शासकों ने किसानों की सुविधा के लिए सिंच की श्रेष्ठ व्यवस्था की थी ताकि किसान सुखी व संपन्न बने रहें।

गुप्तकाल में भूमि अनुदान दिये जाने के कारण तथा सैनिकों को नकद वेतन के स्थान पर भूमि दि जाने की प्रथा के कारण जागीरदारी प्रथा अथवा '**सामन्तवाद**' का उदय हुआ। इन भूमि के स्वामियों को प्रा भूमि से कर प्राप्त करने का भी अधिकार था। वास्तव में इस प्रथा के जनक गुप्त शासक न होकर सातवाहन ई समय के साथ-साथ भू-स्वामियों को कर की वसूली के साथ-साथ दीवानी, फौजदारी व न्यायिक अधिकार प्राप्त हो गये जिससे उनकी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई। भूमि को यदि उसका स्वामी किसी कारणवश विक्र करता था तो ये समस्त अधिकार स्वत: नये स्वामी को प्राप्त हो जाते थे। गुप्त शासन के अंतिम वर्षों में व्याप और वाणिज्य के पतन के कारण कृषि कार्य करने वालों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी थी। फलत: जमींदा को उनके शोषण और उत्पीड़न के अधिक अवसर प्राप्त होने लगे थे। जमींदारों के अत्यधिक शक्तिशाली हो के कारण किसानों को भूमि से हटाने और उनसे बेगार लेने की प्रथा ने जन्म लिया। जमींदार न केवल किसा का उत्पीड़न करते थे अपितु उनके परिवार के अन्य सदस्यों का भी शोषण करते थे। इस काल में दो व विद्यमान थे जो सामन्त वर्ग और निर्धन वर्ग के नाम से जाने जाते थे। जमींदारों द्वारा निरंतर किसानों का शोष किये जाने के कारण उनकी स्थिति उत्तरोत्तर दयनीय होती जा रही थी।

मध्यकाल में किसानों की स्थिति (Condition of Peasants in Medieval Period)—सल्तनत काल में भी देश में कृषि की प्रधानता बनी रही। भूमि के उपजाऊ होने के कारण ए वर्ष में दो फसलें उगाने की परंपरा अभी भी जारी थी। राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भू-राजस्व था जि किसान नगद अथवा अनाज किसी भी रूप में राजकोष में जमा कर सकता था। इस काल में भू-राजस्व की द के संबंध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। अनुमान है कि यह दर उपज का 1/3 भाग रही होगी जिसे बाद अलाउद्दीन खिलजी ने बढ़ाकर 1/2 कर दिया था। इसके अतिरिक्त कृषकों को राजस्व अधिकारियों के शोषण का भी शिकार बनना पड़ता था। प्राकृतिक आपदाओं के होने पर गरीब किसानों की दशा अत्यंत शोचनीय ह जाती थी। यद्यपि फिरोज तुगलक जैसे शासकों ने किसानों की सुविधा के लिए नहरों का निर्माण कराया थ किंतु इसके पीछे किसानों के प्रति उदारता का भाव नहीं अपितु राज्य की आय वृद्धि का भाव जुड़ा हुआ थ अत्यधिक उत्पादन और शाही आदेशों के कारण वस्तुओं के भाव बहुत कम थे।

डॉ. अशरफ ने इस समय की कृषि के संदर्भ में लिखा है, "इस समय की जो उपज थी, वह आज व उपजों से अलग प्रकार की नहीं थी और विभिन्न अनाजों के साथ-साथ जड़ी-बूटियाँ, खुशबूदार लकड़ी मसालों का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता था।" **पलसर्ट** ने नील के अत्यधिक उत्पादन का भी वर्णन किया है

यद्यपि मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दोआब में भीषण अकाल पड़ा था और किसानों को अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े थे किंतु सुल्तान द्वारा स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात किसानों की हर संभव सहायता किये जाने के भी वर्णन उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत काल में किसान संतुष्ट और समृद्ध थे। कुछ स्वार्थी भू-राजस्व अधिकारियों ने उनके शोषण और उत्पीड़न के प्रयास अवश्य किये थे किंतु शासन द्वारा उन्हें इस उत्पीड़न से मुक्त कराने के प्रयास किये गये, और कृषकों का उत्पीड़न करने वाले अधिकारियों को विभिन्न तरीकों से सद्मार्ग पर लाने का भी प्रयास किया गया था।

मुगलकालीन किसानों के संबंध में प्रसिद्ध विद्वान **डॉ.यूसुफ हुसैन** ने लिखा है, "कस्बों और नगरों में रहने वाले किसानों व निम्न श्रेणी के लोगों की स्थिति ऐसी ही थी जैसी आधुनिक समय में है.... वास्तव में किसानों की दयनीय स्थिति औरंगजेब के समय के आस-पास हुई थी।" किंतु अनेक विद्वान इससे सहमत नहीं हैं।

अफगान शासक शेरशाह सूरी और मुगल सम्राट अकबर ने कृषि और कृषकों की स्थिति को सुधारने के प्रयास किये थे। शेरशाह ने राज्य की समस्त भूमि की नाप करवाकर भू-राजस्व निश्चित कराया जो उपज का 1/3 भाग होता था। सामान्य रूप से मालगुजारी राजस्व कर्मचारी वसूल करते थे, किन्तु किसान सीधे राजकोष में भी भू-राजस्व जमा कर सकते थे। यदि सैनिक अभियान के समय किसी किसान की फसल को कोई हानि हो जाती थी तो उसकी पूर्ति शासन द्वारा की जाती थी।

शेरशाह द्वारा भूमि प्रबंध संबंधी कार्यों एवं नीतियों को मुगल बादशाहों ने कुछ संशोधनों के बाद अपना लिया था। उसके भू-राजस्व अधिकारियों ने किसानों व कृषि के स्तर को ऊपर उठाने के प्रयास किये थे। उसने कुल उपज का 1/3 भाग भू-राजस्व लिये जाने की परंपरा को जारी रखा था। उसने कर वसूल करते समय भू-राजस्व अधिकारियों को किसानों के प्रति उदार रहने के भी निर्देश दिए थे। अकबर के प्रसिद्ध राजस्व मंत्री राजा **टोडरमल** द्वारा किसानों को राज्य की ओर से धन दिया जाना, उसके बंदोबस्त की प्रमुख विशेषता थी जिसे किसान आसान किश्तों में वापस कर सकते थे। अकाल पड़ने की दशा में किसानों से भू-राजस्व वसूल नहीं किया जाता था। राजस्व अधिकारियों को कृषकों का उत्पीड़न न करने के भी निर्देश थे। सम्राट अकबर के प्रयासों से किसानों की स्थिति में सुधार हुआ और भू-राजस्व निश्चित होने के कारण वे शोषण का शिकार होने से भी बच गये। **प्रो. सरकार** ने भी लिखा है, "गरीब प्रजा को राजकोष से तकाबी दी गयी ताकि वे लोग बीज और कृषि से संबंधित सामान खरीद सकें।" सम्राट स्वयं कृषि व कृषकों के हितों के प्रति जागरूक था और उसने अपने सूबेदारों को स्पष्ट आदेश दिये थे कि किसानों के हितों की रक्षा की जानी चाहिए।

अकबर के शासन के बाद उसके उत्तराधिकारियों के काल में व्यवस्था में गिरावट आना प्रारंभ हो गया था। राजस्व अधिकारियों को नकद वेतन दिये जाने के स्थान पर जागीरें दिये जाने की परंपरा प्रारंभ हुई और मालगुजारी ठेके पर वसूल किये जाने के कारण किसानों का शोषण होने लगा। यद्यपि **राजा भारमल** ने **शाहजहाँ** के शासन काल में किसानों की स्थिति के संदर्भ में लिखा है "जो कृषक कृषि कार्य के द्वारा आय बढ़ाते थे, उन्हें पुरस्कृत किया जाता था और आय कम करने वालों को दण्डित किया जाता था।" किंतु **बर्नियर** ने लिखा है, "शाहजहाँ के शासन में कृषक खेती का कार्य इच्छा से नहीं वरन विवशता से करते थे।"

औरंगजेब के शासन में कृषि के क्षेत्र में ह्रास के कारण किसानों की स्थिति दयनीय हो गयी थी। निरं युद्धों में धन की आवश्यकता के कारण किसानों पर कर का बोझ बढ़ गया था जिससे किसानों की दशा में गिरावट आ गयी थी। औरंगजेब के शासन में कृषि कार्य की अवहेलना करने वाले किसानों को पीटा जाता तथा उनका शोषण किया जाता था।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है हि मध्यकाल में शोषण और उत्पीड़न के कुछ अवसरों को छोड़ कर किसानों की स्थिति संतोषजनक थी। तत्कालीन अधिकांश शासक किसानों के हितों के लिए जागरूक थे व उन्हें शोषण से बचाने के इच्छुक थे। यही कारण है कि मध्यकाल में कृषि समुन्नत थी और किसान भी सु और समृद्ध थे।

अंग्रेजी शासन में किसानों की दशा (Condition of Peasants in British Rule)—अंग्रेजों के भारत में आगमन से पूर्व भारत के गाँवों में रहने वाले किसानों की स्थिति संतोषजनक किंतु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात उनकी स्थिति उत्तरोत्तर गिरती गयी। इस काल में किसान जमींदार व साहूकारों के पंजे में दब गये थे। धन का अभाव, अज्ञानता और भाग्यवादिता सदैव उनकी उन्नति के मार्ग बाधक बनी रही, किंतु समय के साथ इस स्थिति में भी कुछ सुधार होने लगे। यदि क्लाइव और हेस्टिंग्ज अधिक धन वसूली के द्वारा किसानों का शोषण प्रारंभ किया तो कार्नवालिस की नीति ने उन्हें जमींदार के ह का खिलौना बना दिया। भू-राजस्व की दर 55% कर दिये जाने से किसान की कमर टूट गयी और सरक राजस्व की अदायगी के लिए उसे ऊँची ब्याज की दर पर ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। रैय्यतवाड़ी व महालवाड़ी प्रथाओं ने भी उसकी स्थिति के सुधार में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया। वस्तुत: यह व्यव भी जमींदारी प्रथा का ही एक रूप सिद्ध हुई और कृषक निरंतर शोषण व उत्पीड़न का शिकार बनते रहे। प्रथ भू-राजस्व वसूली की पद्धति दूषित थी और द्वितीय, ब्रिटिश सरकार अर्जित धन का प्रयोग केवल अपने हित करती थी जिससे किसानों में असंतोष फैलता था। यदि कोई किसान किसी प्राकृतिक विपत्ति के का भू-राजस्व अदा नहीं कर पाता था, तब उसकी भूमि को नीलाम कर दिया जाता था। अत: भूमि की रक्षा हेतु के अभाव में किसान के पास एकमात्र विकल्प ऋण लेना रहता था। एक बार ऋण लेकर वह महाजन चंगुल में फाँस जाता था जिससे जीवन भर निकल नहीं पाता था।

अंग्रेजों ने अपने शासन में खाद्यान्नों की अपेक्षा वाणिज्य की दृष्टि से लाभदायक वस्तुओं कपास, नी जूट व चाय के उत्पादन पर अधिक बल दिया क्योंकि भारतीय उपनिवेश से कच्चा माल अधिकाधिक प्र करके वे अपने कारखानों की माँग की पूर्ति में रुचि रखते थे। इसी कारण अंग्रेजी शासन में खाद्यानों के क्षेत्र भारत की आत्मनिर्भरता समाप्त होने लगी और लोगों को विवश होकर आयातित अनाज पर निर्भर होना प इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने बिहार व बंगाल के नील उत्पादक किसानों का अत्यधिक उत्पीड़न व शोषण कि जिसके कारण उनमें विद्रोह की भावना जाग्रत होने लगी। वस्तुत: भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाज खाद्यान्नों का अभाव, राजस्व अधिकारियों के शोषण और महाजनों व साहूकारों के अत्याचार के कारण किस विद्रोह के लिए विवश हुए थे। इस समय में होने वाले विद्रोहों में **नील विद्रोह, कूकी विद्रोह, मोपला वि** आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कृषक आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित करने में महात्मा गाँधी और सरदार पटेल ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद का भी इस क्षेत्र में योगदान प्रशंसनीय रहा। निरंतर शोषण से पीड़ित नील की खेती करने वाले किसानों को 1917-18 ई. में महात्मा गाँधी ने **चम्पारन** में विरोध के लिए प्रेरित किया और उन्होंने अपने स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। संभवत: किसानों के हितों की रक्षा की दृष्टि से यह गाँधीजी द्वारा संचालित प्रथम विद्रोह था। इसका किसानों को वांछित लाभ भी प्राप्त हुआ क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने भू-राजस्व का 1/4 भाग माफ कर दिया। इस विद्रोह की सफलता से प्रभावित होकर पुन: महात्मा गाँधी व सरदार बल्लभ भाई पटेल ने **खेड़ा** (गुजरात) में एक आंदोलन प्रारंभ किया जो सरकारी शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया कहा जा सकता है। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप सरकार को कृषकों को कुछ सुविधाएँ देने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी प्रकार 1928 ई. में **बारदोली** में भी किसान आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इन आंदोलनों के फलस्वरूप कई कृषक संगठनों का गठन हुआ जिसने अंतत: 1936 ई में '**अखिल भारतीय किसान सभा**' का स्वरूप ग्रहण किया और इसकी सदस्य संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ था।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में किसानों की स्थिति में सुधार लाने में **जमींदारी उन्मूलन** अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ। इस काल में कृषि की तकनीक में भी सुधार होने से उत्पादन में वृद्धि हुई। अब किसान कृषि में विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करने लगे थे। साथ ही अखिल भारतीय स्तर पर किसान सभा के गठन के बाद किसानों में जागरूकता आ गयी थी और उन्होंने आंदोलनों के माध्यम से सरकार के सम्मुख माँग प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया था। वस्तुओं के भाव गिर जाने पर किसानों ने अपने संगठन के माध्यम से सड़क व रेलमार्ग अवरुद्ध करके अपनी माँगों को मनवाना प्रारंभ कर दिया था। वर्तमान में किसान नेता महेन्द्र सिंह टिकैत ने उनके हितों की सुरक्षा हेतु कई बार आंदोलनों का संचालन किया जिससे किसानों को लाभ हुआ और विद्युत दर को कम कर दिया गया। सरकार उत्पादित वस्तुओं के मूल्य कम करके शहरी क्षेत्र में सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध कराने के पक्ष में रहती है। मूल्य दरों की कमी किसानों को आंदोलनात्मक रुख अपनाने के लिए विवश करती है। कृषक अधिक धन लगाकर उत्पादित अनाज कम मूल्य पर बेचने के विरुद्ध रहते हैं ताकि वह शोषण से बच सकें। यद्यपि सरकार ने किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं किन्तु वे पर्याप्त संतोषजनक नहीं हैं। वस्तुत: अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए किसानों में जागृति नितांत आवश्यक है, तभी वे उत्पीड़न व शोषण से मुक्त होकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

श्रमिक वर्ग (Labour Class)—श्रमिक वर्ग समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग है। प्रत्येक युग में उनके प्रति लोगों का दृष्टिकोण संवेदनाहीन रहा है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक श्रमिक वर्ग को समाज में महत्त्व न दिये जाने के कारण तथा उनके तरह-तरह की बेगार लिये जाने के कारण उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। यही कारण है कि आज श्रमिकों ने अपने संगठनों के माध्यम से आंदोलनात्मक नीति को अपना लिया है ताकि वे सम्मानजनक व सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। भारत में अधिकांश मजूदरों के अशिक्षित और अप्रशिक्षित होने के कारण वे सरलता से कारखानों के स्वामियों के अत्याचारों और शोषण का शिकार बनते रहें हैं। न तो उनके काम के घंटे निश्चित हैं और न ही उन्हें उचित वेतन दिया जाता है। जिस वातावरण में वे काम करते हैं वह अत्यधिक अस्वास्थ्यकर और खतरनाक होता है। महिला और बाल श्रमिकों का सर्वाधिक शोषण होता है। मध्यकाल में ***श्रमिकों की दयनीय स्थिति*** का वर्णन करते हुए **पलसर्ट** ने लिखा है, "उनके

मकान मिट्टी के बने हुए छप्पर की छतों के हैं। कुछ मिट्टी के घड़ों और पकाने के बर्तनों और दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घरों में साज-सज्जा की सामग्री बिल्कुल नहीं है।''

यूरोप की **औद्योगिक क्रांति** का प्रारंभ में भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परंतु 1858 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की शक्ति ब्रिटिश ताज को दिये जाने के बाद इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगा क्योंकि इस अवधि में भारत का औद्योगिक विकास होने के कारण श्रमिकों के महत्व में भी वृद्धि होने लगी थी। कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की स्थिति 19 वीं शताब्दी तक अत्यंत शोचनीय थी। कारखानों में कार्यरत श्रमिकों को कोई सुविधा प्राप्त नहीं थी और न ही कारखानों में समुचित प्रकाश और वायु की कोई व्यवस्था थी। अतः मजदूरों को कम वेतन पर घुटन भरे वातावरण में कार्य करने के लिए विवश रहना पड़ता था।

1881 ई. में **प्रथम कारखाना अधिनियम** पारित हुआ, परंतु भारत के कारखानों में इस नियम को लागू नहीं किया गया। इस तथ्य की जानकारी के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया। इसके कार्यकाल के दौरान **श्री लोखण्डे** ने कमीशन के सम्मुख मजदूरों की ओर से एक माँग पत्र प्रस्तुत किया जिसमें काम के घंटे निश्चित करने, साप्ताहिक छुट्टी दिये जाने, चोट लगने पर मुआवजा दिये जाने और समय पर वेतन वितरण की मांग का उल्लेख था। इस अधिनियम को इतना महत्व प्रदान नहीं किया गया जितनी श्री लोखण्डे को अपेक्षा थी।

बंगाल विभाजन के साथ ही देश में उग्र राष्ट्रवाद की लहर दौड़ गयी जिसने मजदूरों को अत्यधिक प्रभावित किया और बंबई के मजदूरों ने कार्य के घंटे निर्धारित किये जाने की माँग पर हड़ताल की। इसी समय रेलवे के श्रमिक भी अपनी माँगों के समर्थन में हड़ताल के लिए प्रेरित हुए। सरकार के अत्यधिक दबाव और हड़ताल-विरोधी दृष्टिकोण के बाद भी यह आंदोलन निरंतर उग्र रूप धारण करता गया और रेलवे विभाग व अन्य शाखाओं में भी फैल गया। मजूदरों के रुख को देखते हुए सरकार ने 1891 ई. में दूसरा **भारतीय कारखाना अधिनियम** पारित किया जिसके द्वरा श्रमिकों को कुछ सुविधाएँ प्रदान की गयीं। साप्ताहिक छुट्टी की माँग स्वीकार कर ली गयी। महिलाओं का दिन में 11 घंटे काम करना निश्चित हुआ परंतु पुरुषों के लिए कार्य करने के घंटों को निश्चित नहीं किया जा सका। बाल श्रमिकों को 7 घंटे काम करने का भी निश्चय इस अधिनियम के माध्यम से किया गया। परंतु इनमें से किसी भी अधिनियम को अंग्रेजों के चाय व कॉफी बागानों पर लागू नहीं किया गया। बागान के स्वामी मजदूरों को अधिक वेतन देने के विरोधी थे, अतः श्रमिकों को धोखा देकर दास के रूप में यहाँ कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता था। रूस की 1917 ई. की क्रांति और प्रथम विश्वयुद्ध के बाद श्रमिकों के आंदोलनों में अत्यधिक वृद्धि देखने को मिलती है

20 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में राष्ट्रीय आंदोलन अपनी पराकाष्ठा पर था। इसी समय में डाक-तार विभाग और सरकारी प्रेसों के कर्मचारियों ने भी हड़ताल की घोषणा कर दी। जब बाल गंगाधार तिलक को 2 जुलाई, 1908 ई. को पुनः छः वर्ष के लिए बन्दीगृह में डाल दिया गया, बंबई के मजदूरों ने छः दिन तक सड़कों पर पूर्ण हड़ताल रखी। उन्होंने सरकारी सड़कों पर सेना का भी सामना किया। यह तिलक के बंदीकरण के विरोध में मजदूरों की प्रथम सफल हड़ताल थी जिसमें लाखों श्रमिकों ने भाग लिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय में भारत के राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए रूस की **बोल्शविक क्रांति** ने मजदूरों को अत्यधिक प्रभावित किया और बंगाल के मजदूर भी इससे अछू

नहीं रहे। परिणामत: भारत में भी मजदूर आंदोलनों का श्रीगणेश हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ा और मजदूरों को कई आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। **आर्थिक मंदी** ने इनके जीवन को नारकीय बना दिया और धनी दिन-प्रतिदिन धनवान और निर्धन दिन-प्रतिदिन और निर्धन होते गये।

हड़ताल की जो प्रक्रिया 1918 ई. में प्रारंभ हुई, वह अगले तीन वर्ष तक जारी रही। 1918 ई. की हड़ताल से बंबई के सूती कपड़ों के कारखाने लगभग बंद हो गये। 1919 ई. में रौलट एक्ट के विरुद्ध मजदूरों ने पुन: हड़ताल का सहारा लिया। इससे प्रेरित हो कानपुर की सूती मिलों में, कलकत्ता की जूट मिलों में, बंबई के मजदूरों ने तथा ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कंपनी, बंबई और शोलापुर, टाटानगर, मद्रास और अहमदाबाद के मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी। इन हड़तालों के परिणामस्वरूप देश का आर्थिक ढाँचा पंगु हो गया।

1917 ई. की रूसी क्रांति के बाद **मजदूर यूनियन** का उदय एक शक्तिशाली इकाई के रूप में हुआ और साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी उनका दमन नहीं कर सकीं। मजदूरों को न्याय दिलाने के लिए **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन** का राष्ट्र संघ के अंतर्गत गठन किया गया, परंतु भारत में कोई अखिल भारतीय स्तर का मजदूर संगठन न होने के कारण सरकार स्वेच्छा से प्रतिनिधि चुनकर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में भेजती थी, इसलिए अंग्रेजी सरकार का विश्वस्त व्यक्ति ही इसका सदस्य होता था। मजदूरों ने सरकार के इस अधिकार का विरोध किया, स्वयं अपना प्रतिनिधि चुनने का दावा प्रस्तुत किया और विभिन्न नेताओं (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, एनी बेसेंट, सी.एफ. ऐंड्रयूज आदि) के प्रयासों से **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस** की स्थापना की गयी। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य आई.एल.ओ. के लिए सदस्य का चुनाव करना था न कि अखिल भारतीय स्तर पर कोई मजदूर संगठन बनाना था। इस संगठन के द्वारा जोशी व दीवान चमनलाल का प्रतिनिधित्व हेतु चयन किया गया था। 1927 ई. तक इस संगठन की बागडोर सुधारवादियों के हाथ में रही और 1924 ई. में देशबंधु चितरंजन दास ने एक अधिवेशन में इसकी अध्यक्षता की थी। इस अधिवेशन में सरकार से मजदूरों के हित में कानून बनाने का भी आग्रह किया गया। 1929 ई. में '**भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन**' के नाम से एक अन्य संगठन भी बनाया गया। श्रमिक संगठन में सदैव एकता का अभाव पाया गया। सरकार की दमानात्मक नीतियाँ भी इसके मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करती रहीं। फिर भी अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर आंदोलन का विकास तीव्र गति से हुआ।

1929 ई. में भारत के इतिहास में एक जटिल स्थिति उत्पन्न हो गयी। पुराने सुधारवादी नेताओं को उनके पदों से हटाया जा रहा था और साम्यवादियों का प्रभाव तीव्र गति से बढ़ रहा था। साम्यवादियों ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया था अपितु वे अंग्रेजी साम्राज्यवाद को उखाड़कर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के भी इच्छुक थे।

1934 ई. में **कांग्रेस समाजवादी दल** के शक्ति में आने के बाद, उसने विभिन्न श्रमिक संगठनों को संगठित करने का प्रयास किया। उसे इस कार्य में 1938 ई. में सफलता प्राप्त हुई। इस अवधि में श्रमिक आंदोलन के विकास में आवश्यक वस्तुओं का अभाव व पतनोन्मुख आर्थिक अवस्था सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुए। परंतु सरकार ने इस आंदोलन पर अंकुश लगाने के लिए 'भारतीय सुरक्षा अधिनियम' का प्रयोग किया।

सन् 1920 ई. में AINTUC (अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस) की स्थापना हुई। फलतः स्थान-स्थान पर अपनी माँगों को लेकर मजदूरों ने हड़तालें कीं और संपूर्ण देश में अशांति व अराजकता फैल गयी।

अत: स्पष्ट है कि भारत की स्वतंत्रता से पूर्व मजदूरों ने अपने संगठन बना लिये थे क्योंकि अब वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये थे। हड़ताल को उन्होंने अपना माध्यम बनाया था, फिर भी शक्तिसंपन्न कारखानों के स्वामी उनके कार्य में बाधक थे। अत: मजदूरों को कोई विशेष उपलब्धि प्राप्त नहीं हो सकी इसका एक महत्वपूर्ण कारण उनकी अशिक्षा और संगठन की शिथिलता भी था।

● 4.5 भारतीय इतिहास में संस्कृति (Culture in Indian History)

सभ्यता और संस्कृति शब्दों के संबंध में विद्वानों में तीव्र मतभेद है। कुछ विद्वान दोनों शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची मानते हैं, जबकि अन्य दोनों की अलग-अलग रूप में व्याख्या करते हैं। दोनों के मध्य अंतर को स्पष्ट करते हुए एक विद्वान का मत है कि सभ्यता यदि किसी व्यक्ति का बाह्य आवरण है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। संस्कृति शब्द मूलत: संस्कृत का है, जिसका अर्थ मूल क्रिया है और जिसका संधि-विच्छेद सम+कृति अर्थात् संस्कृति के रूप में किया जाता है। अत: संस्कृति से तात्पर्य भली प्रकार किये गये व्यवहार से है। इसी प्रकार संस्कृति के लिए प्रयोग किये गये 'कल्चर' शब्द की उत्पत्ति भी विद्वान लैटिन शब्द 'कलचुरा' से मानते हैं, जिसका अर्थ है-उत्पादन। अत: स्पष्ट है कि संस्कृति विभिन्न युगों के समाज द्वारा संचित वह अमूल्य निधि है जो निरंतर प्रगतिशील है। प्रमुख भारतीय विद्वानों ने इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की है—

पं. जवाहर लाल नेहरू के अनुसार, "संसार में जो भी श्रेष्ठतम बातें कही अथवा जानी गयी हैं, उन स्वयं को परिचित कराना संस्कृति है।" **डॉ. एस. राधाकृष्णन** ने भी लिखा है, "संस्कृति अपने सदस्यों व विपरीत दिशाओं में क्रियाशील बलों के अत्यंत सूक्ष्म संतुलन के फलस्वरूप उत्पन्न संतुलन एवं दृढ़ता प्रद करती है।"

इसी प्रकार विदेशी इतिहासकार **टेलर** ने लिखा है, "संस्कृति वह मिश्रित व पूर्ण व्यवस्था है जिस अंतर्गत वे सभी ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता के सिद्धांत, विधि-विधान, प्रथाएँ तथा अन्य क्षमताएँ आती जिन्हें व्यक्ति समाज के सदस्य के नाते समाज से प्राप्त करते हैं।"

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Culture)—भारतीय संस्कृति का एक निश्चित विकास-क्रम रहा है। उसमें विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष और संपर्क के फलस्वरूप आदान-प्रदान और परिवर्तन होते रहे हैं। परंतु उसके मूल स्वरूप में यथास्थिति सदैव बनी रही है। भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसकी अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं। धर्म और अध्यात्मवाद इसके मूल तत्त्व हैं। भारतीय संस्कृति अपनी समन्वय की शक्ति के लिए प्रसिद्ध है, इसलिए कि अन्य संस्कृति का इस पर कोई विशिष्ट प्रभाव दिखायी नहीं पड़ता है। यही कारण है कि प्राचीन काल से चली आ रही संस्कृति ही मध्य काल और आधुनिक काल तक की संस्कृति का आधार बनी रही। इसकी प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

प्राचीन स्वरूप (Ancient Nature)—भारतीय संस्कृति का स्वरूप अत्यंत प्राचीन है। विश्व की अन्य संस्कृतियों की यह सिरमौर है। प्रागैतिहासिक काल से ही मानव ने अपनी संस्कृति के विकास की ओर जो कदम उठाया, वह आज भी अवरुद्ध नहीं हुआ है। अत: पुरातनता भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। विश्व की अन्य संस्कृतियों का उत्थान बहुत बाद में हुआ है।

समायोजनवादिता (Adjustability)—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता उसकी समन्वयवादी प्रकृति है। भारतीय संस्कृति ने समय-समय पर कई संस्कृतियों को अपने में आत्मसात किया किंतु इसने अपनी मौलिक विशेषताओं और तत्वों को कभी त्यागा नहीं। दूसरी संस्कृति की अच्छाइयों को ग्रहण करके भारतीय संस्कृति ने अपने आपको और अधिक समृद्ध किया। भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक भावना से भारत में मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य संस्कृतियों का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

धर्म और आध्यात्मिकता (Religion and Spirituality)—भारतीय संस्कृति में धर्म और अध्यात्मवाद को सदैव से महत्त्व प्राप्त रहा है। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है। इसमें ब्रह्म, देवी-देवताओं, धार्मिक क्रियाओं, स्वर्ग-नरक के धार्मिक सिद्धांत के साथ-साथ अनेक नियमों और विधि-विधानों का भी समावेश पाया जाता है जिससे व्यक्ति का धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव हो सके। भारतीय धर्म का स्वरूप बहुदेववादी है और भारतीय संस्कृति का आधार सहिष्णुता है। ईश्वर अव्यक्त और अचिंत्य है और भारत में प्रचलित विभिन्न धर्म उसे प्राप्त करने के साधन हैं। भारतीय संस्कृति की धर्म से जुड़ी हुई एक अन्य विशेषता अध्यात्मवाद है जिसके कारण भारतीय संस्कृति का स्वरूप अन्य संस्कृतियों से भिन्न अनुभव किया जाता है। **डॉ. एस. राधाकृष्णन** ने लिखा है, "मानव की तार्किक प्रवृत्ति से अधिक बल आध्यात्मिक प्रवृत्ति पर दिया जाता है।" हिंदू धर्मशास्त्रों में जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति बताया गया है और इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति लालायित रहता है। भक्ति, ज्ञान और तप मोक्ष-प्राप्ति के प्रमुख मार्ग हैं। अत: धर्म और अध्यात्मवाद भारतीय संस्कृति की प्रमुख आधारशिला हैं।

दार्शनिक तत्त्व (Philosophical Element)— भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि दर्शन पर आधारित है। ब्रह्म तत्वों का स्पष्टीकरण भारतीय संस्कृति की विशेषता है। दार्शनिक सिद्धांतों और परंपराओं के कारण भारतीय संस्कृति सदैव से प्रवाहित और विकसित होती रही है। भारत के इतिहासकार, लेखक, कलाकार और सभी विद्वान अपनी-अपनी रचनाओं में दार्शनिक तत्वों को प्रतिष्ठित करने की दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं। अत: दार्शनिक तत्वों के कारण भी भारतीय संस्कृति सदैव आदर व प्रतिष्ठा बनाये रखने में सफल रही है जो इसकी एक विशेषता कही जा सकती है।

लचीलापन (Flexibility)—भारत की सामाजिक व्यवस्था अत्यंत लचीली रही है। उसमें परिस्थितियों के अनुकूल ढल जाने की क्षमता है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति ने बाह्य प्रभावों को स्वीकार करके सदैव अपने आपके समयानुकूल बनाये रखा है। आज जबकि यूनान और रोम जैसे देशों की संस्कृतियों का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है तब भी भारतीय संस्कृति का स्वरूप अक्षुण्ण बना हुआ है। बाह्य तत्वों को भारतीय संस्कृति ने ग्रहण अवश्य किया किंतु अपने मूल तत्वों को नष्ट नहीं होने दिया, जो भारतीय संस्कृति के लचीलेपन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। भारतीय संस्कृति शताब्दियों के बाद भी आज तक अजर व अमर रूप में अन्य संस्कृतियों की प्रेरणा बनी हुई है।

देवपरायणता (Faith in Gods)—देवपरायणता भी भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। प्र के प्रत्येक क्षेत्र को किसी न किसी देवता से संबद्ध मान लिया गया। ब्रह्मा द्वारा रचित इस सृष्टि के संचाल भी विभिन्न देवताओं इंद्र, विष्णु, शिव, सूर्य, अग्नि आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। इन देवताओं भिन्न-भिन्न प्रकार से पूजा-अर्चना के द्वारा ही व्यक्ति इनके आशीर्वाद को प्राप्त करके देवलोक की प्राप्ति सकता है, यह विचार भी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। सामान्यत: मनुष्य की यह धारणा है सद्कर्म से ही देवगण प्रसन्न होते हैं और बुरे कर्म उन्हें नाराज कर देते हैं। इसलिए भारतीयों में सब कुछ इ को समर्पित करने की भावना है। हमारी प्राचीन समय से यह धारणा है कि हमें जीवन में जो कुछ प्राप्त है देव कृपा से ही मिला है।

वर्णाश्रम व्यवस्था (Varnashram System)—भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशे वर्णाश्रम व्यवस्था है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में वर्ण व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। इसके भारतीय समाज को चार वर्णों में बाँटा गया है जिसका आधार धर्म की रक्षा, देश की सुरक्षा करना, अर्थ व्यवस्था और सेवा करना है। वर्तमान में इस व्यवस्था का स्वरूप कर्म पर आधारित न होकर जन्म से निर्ध होता है।

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के नाम से जाने जाते हैं। मानव की आयु सौ वर्ष मानकर प्रत्येक अ को 25 साल की अवधि दी गयी है। इस व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक आदर्शों की स्थापना मानव का पूर्ण विकास करना है।

सबके प्रति सुख की भावना (Feeling of Happiness to All)—मनुष्य स्वभावत: अ सुख के प्रति चिंतित रहता है और अपने स्वार्थ की प्रवृत्ति से ग्रसित होता है, परंतु भारत में सभी धर्मों का है—किसी को दु:ख न देना, दूसरों की उन्नति के लिए प्रस्तुत रहना और उनके कष्टों के हरण के लिए मन, धन से सहयोग करना। भारत में 'सर्वे भवन्ति सुखिन:' का सिद्धांत सदैव स्वीकार्य रहा है। यही कार कि लोग परोपकार की भावना से प्रेरित होकर सभी के कल्याण के संबंध में उद्यत रहते हैं और अपने स्वा लिए दूसरे का शोषण नहीं करते हैं। सबके सुख की चिंता करना भी भारतीय संसकृति की महत्त्वपूर्ण विशे है।

सांस्कृतिक एकता (Cultural Unity)—भारत के संदर्भ में यह कहा जाता है कि विभिन्नताओं का देश है परंतु उसमें एक आधारभूत एकता सदैव से विद्यमान रही है। हमारे देश में इस ए का आधार सांस्कृतिक कारण हैं। भारत में एकता और अखंडता धार्मिक विश्वासों में स्पष्ट दिखायी देती यद्यपि लोग अलग-अलग धर्म को मानते हैं, परन्तु प्रत्येक धर्मावलंबी जीवन में विभिन्न नदियों और पर्वतो पूजनीय मानता है और उन्हें दर्शनीय स्वीकार करता है। भारत के विभिन्न भागों में स्थित चार पुरियाँ भी भार एकता की पुष्टि करती हैं। राम और कृष्ण के आदर्श चरित्र सभी के लिए अनुकरणीय हैं। भारत में राजनी व सांस्कृतिक एकता की जड़ें अत्यंत गहरी हैं जिन्हें केवल अंतर्दृष्टि से ही जाना और समझा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में उपरोक्त सभी विशेषताओं के पाये जाने के कारण ही यह संस्कृति संसार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। जिस तरह समस्त नदियाँ समुद्र में जाकर अपना अस्तित्व खो देती हैं, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति के संपर्क में आकर अन्य संस्कृतियों का भी महत्व समाप्त हो गया है और एकमात्र भारतीय संस्कृति ही अपना महत्व बनाये हुए है।

● धर्म का अर्थ (Meaning of Religion)

'धर्म' शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से 'मन' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है 'धारण करना' या ग्रहण करना, अर्थात् जो लोक को धारण करे या जिससे लोक धारण किया जाये, वही धर्म है। महाभारत के अनुसार, धारण करने वाले को धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। धर्म ही व्यक्ति को लोक-परलोक में शांति प्रदान करता है।

धर्म व आध्यात्म भारतीय संस्कृति व जीवन का सदैव से प्रमुख अंग रहे हैं और प्रत्येक काल में मानव ने उसे किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। धार्मिक आस्था के अभाव में समाज अराजक तत्त्वों का समूह मात्र रह जायेगा क्योंकि ईश्वर के भय से ही व्यक्ति धर्म की ओर आकर्षित होता है और यह विचार करता है कि सद्कर्म ही उसे आवागमन के बंधन से मुक्ति दिला कर मोक्ष के मार्ग की ओर प्रशस्त करते हैं। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि व्यक्ति का ईश्वर के प्रति झुकाव और धर्म में आस्था का मूल कारण भय, आकर्षण और स्वार्थ है। इनके अभाव में धर्म का महत्व ही नहीं रह जाता है। समय-समय पर भारत में विभिन्न धर्मों का आबिर्भाव हुआ जिनमें हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि प्रमुख हैं। इन सभी धर्मों की विभिन्न शाखाओं का भी वर्णन इतिहास में मिलता है, जिससे ये स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के धर्म का स्वरूप भी समय-समय पर बदलता रहा है जिसका कारण समय व काल स्वीकार किया जा सकता है। भारत में प्रचलित निम्नलिखित धर्म मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं—

वैदिक धर्म (Vedic Religion)—वैदिक धर्म का आधार वेद हैं जिनके अध्ययन से वैदिक धर्म का एक परंपरागत स्वरूप स्पष्ट दिखायी देता है। ऋग्वेद के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक धर्म का प्रारंभ बहुदेववाद की भावना पर आधारित था। वैदिक काल के मनुष्य ने प्रकृति के मानवीकरण के द्वारा अपने देवताओं को प्रतिष्ठित कर लिया था। जो प्रकृति के तत्त्व उसे अपनी ओर आकर्षित करते थे, अथवा भयभीत करते थे या जिनसे उसका हित होता था या जिन्हें वह समझ नहीं पाया, उन सभी को उसने देवता मान कर उनकी पूजा-अर्चना प्रारम्भ कर दी, जैसे-सूर्य, वरुण, अग्नि, रूद्र, इन्द्र, वायु, उषा और सोम आदि किसी न किसी रूप में उनके पूजनीय हैं। व्यक्ति जिस देवता की आराधना करता था उसे सर्वोच्च देवता के रूप में मान्यता प्रदान करता था और अन्य को गौण मान लेता था। वैदिक साहित्य से इस काल में विभिन्न देवी-देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ स्वीकार कर ली गयी है। इस काल में देवियों की तुलना में देवताओं को अधिक महत्व प्रदान किया गया है।

वैदिक काल में हवन व यज्ञ को विशेष महत्व दिया जाता था और गृहस्थ जीवन को मोक्ष के मार्ग में बाधक स्वीकार नहीं किया जाता था। पति-पत्नी दोनों यज्ञ में भाग लेते थे और यज्ञ-विधि अत्यंत सरल थी, परंतु समय के साथ उसका स्वरूप जटिल होता गया और उसमें अनेक आडम्बरों के आ जाने के कारण वह अत्यंत खर्चीले हो गये। सामान्यत: इतिहास में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है। प्रथम, गृह यज्ञ से तात्पर्य उस यज्ञ से है जो गृह कर्म से संबंध रखता है और द्वितीय, श्रोत यज्ञ का अर्थ उस यज्ञ से है जो वेद के अनुकूल हो। धीरे-धीरे यज्ञों के रूप में परिवर्तन होने लगा और पौराणिक काल में यज्ञ को पूजा स्वीकार कर लिया गया। वर्तमान समाज में यज्ञ से तात्पर्य पूजा से ही है।

किंतु उपनिषदों में यज्ञों के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति का विरोध किया गया। इस समय ज्ञान मार्ग को एकमात्र मोक्ष का साधन माना गया। कालांतर में कर्म और भक्ति को भी मोक्ष के साधन के रूप में मान्य प्रदान की गयी। उपनिषदों का मुख्य सार ब्रह्म और आत्मा का एकीकरण है और इसे परम सत्य स्वीकार कि गया है। वैदिक काल के देवी-देवता प्रकृति के प्रतीक और उदार स्वभाव के थे। उन्हें न तो मूर्तियों आवश्यकता थी और न ही जटिल कर्मकाण्ड की। आर्य अपने देवताओं की पूजा अदृश्य शक्ति के रूप में क थे। पूजा हेतु किसी मंदिर का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध नहीं है किंतु उनके धार्मिक विश्वासों विचारों की झलक ऋग्वेद में स्पष्ट दिखायी देती है। विभिन्न देवी-देवताओं के पूजक आर्य एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे और उसे ही संपूर्ण संसार का स्वामी मानते थे।

उत्तर वैदिक काल में यज्ञों का महत्व अत्यधिक बढ़ गया था और उसमें कुछ जटिलताएँ भी आ गयी अब परिवार के मुखिया के स्थान पर इनका संपादन ब्राह्मणों अथवा पुरोहितों द्वारा कराया जाने लगा था। काल में तप, मोक्ष और पुनर्जन्म को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा था। डॉ. राधामुकुद मुकर्जी ने अ पुस्तक 'हिन्दू सभ्यता' में लिखा है, "उत्तर वैदिक काल में हिन्दुत्व के प्रमुख सिद्धांत कर्म, माया और मु अर्थात ब्रह्म में लीन होना आदि का प्रतिपादन हो गया था।"

हिन्दू पौराणिक धर्म (Hindu Traditional Religion)—हिन्दू पौराणिक धर्म का अ समन्वय था। इसमें पूर्वगामी सभी धर्मों का सार था। इस समय में वैदिक देवी-देवताओं के साथ-साथ नवीन देवताओं की आराधना भी होने लगी थी जिसमें विष्णु और शिव को विशेष महत्व दिया गया है। देवियं माँ दुर्गा और काली के साथ-साथ अन्य देवियों को भी मान्यता प्राप्त थी। बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रभाव से वैदि धर्म में यज्ञ, कर्मकाण्ड और बलि का प्रभाव क्षीण हो गया था। अब भक्ति और मूर्तिपूजा पर अधिक बल दि जाने लगा था। इसीलिए इस धर्म को पौराणिक हिन्दू धर्म अथवा सनातन धर्म के नाम से मान्यता प्रदान कर गयी थी तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव (महेश) की उपासाना क्रमश: संसार के निर्माता, पालक और विध्वंसक रूप में की जाने लगी। देवताओं के नाम के आधार पर ही कुछ नवीन धार्मिक संप्रदायों का अस्तित्व प्रकाश आया और अपनी रुचि के अनुसार उसकी भक्ति में संलग्न हो गये।

वैष्णव धर्म (Vaishnav Religion)—वैदिक धर्म से उत्पन्न जटिलता और कर्मकाण्ड बलि के विरोध में वैष्णव धर्म का उदय हुआ। इस धर्म में ईश्वर की भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने पर दिया गया है और कृष्ण की विष्णु के अवतार के रूप में आराधना की जाने लगी। विष्णु के अतिरिक्त संप्रदाय में कुछ अन्य देवताओं की पूजा-अर्चना का उल्लेख भी धार्मिक साहित्य में उपलब्ध होता है। वैष्ण संप्रदाय के अनुयायी अपने देवता को सर्वगुणसंपन्न मानते हैं। तीसरी शताब्दी तक वैष्णव धर्म का प्र लगभग समस्त भारत में हो चुका था किंतु पाणिनि के ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में भागवत अथवा वैष्णव धर्म प्रचार व प्रसार उत्तर और पश्चिम में पूरे भारत से अधिक होने का उल्लेख मिलता है।

वैष्णव धर्म के अंतर्गत मूर्ति-पूजा को विशेष महत्व प्राप्त है और इनकी स्थापना हेतु अनेकानेक मंदिरों निर्माण का भी उल्लेख मिलता है। वैष्णव धर्म के सिद्धांतों का सर्वोत्तम विवेचन गीता में मिलता है जिसका आधार ज्ञान, कर्म और भक्ति माना गया है। इन तीनों साधनों का अनुसरण करके व्यक्ति सरलता से मोक्ष प्र

कर सकता है। इस धर्म के अंतर्गत भगवान विष्णु के अन्य अवतारों की भी कल्पना का वर्णन मिलता है, जो निम्न प्रकार हैं— 1. मत्स्य, 2. कूर्म/कच्छप, 3. वाराह, 4. नृसिंह, 5. वामन, 6. परशुराम, 7. राम, 8. कृष्ण, 9. बुद्ध और 10. कल्कि। अन्तिम अवतार कल्कि भविष्य में होने वाला है जो दुष्टों का संहार करके पृथ्वी पर पुन: स्वर्ग स्थापित करेंगे। इस संप्रदाय के प्रमुख नायक के रूप में रोहिणी पुत्र संकर्षण, रूक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न, जाम्बवती पुत्र साम्ब और प्रद्युम्न पुत्र अनिरूद्ध का भी विशेष महत्व है।

वैष्णव धर्म के विकास में मध्यकालीन भक्ति संत रामानुज की विशिष्ट भूमिका स्वीकार की जाती है। वे चित्त, अचित और ईश्वर के अस्तित्व को मान्यता प्रदान करते थे। इस धर्म की प्रमुख शाखाएँ ब्रह्म संप्रदाय, रूद्र सम्प्रदाय और सनक संप्रदाय हैं जिनके नायक क्रमश: माधवाचार्य, बल्लभाचार्य और निम्बार्क थे। वैष्णव धर्म को बंगाल में विशिष्ट महत्व प्रदान कराने में चैतन्य महाप्रभु का योगदान अद्वितीय है। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे और उसकी उपासना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति में विश्वास करते थे। इस संप्रदाय में भक्ति अथवा ईश्वर स्मरण एवं तीर्थ यात्राओं को भी विशेष महत्व दिया गया है। प्रारंभ में कृष्ण, विष्णु और नारायण को अलग-अलग देवता के रूप में मान्यता प्राप्त थी, किंतु कालांतर में इनके एकात्म हो जाने के कारण वैष्णव धर्म को भागवत धर्म कहा जाने लगा।

शैव धर्म (Shaiv Religion)—इतिहास में शैव धर्म अत्यंत प्राचीन माना गया है। इसका उल्लेख सिंधु सभ्यता के अंतर्गत भी मिलता है। शिव की उपासना वे एक लोकप्रिय देवता के रूप में करते थे। खुदाई में प्राप्त मुद्राओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है। एक मुद्रा पर एक व्यक्ति को योगमुद्रा में बैठे हुए अंकित किया गया है। इसके तीन मुख और सिर पर सींग हैं। इसके चारों ओर हाथी, चीता, बैल, भैंसा आदि पशुओं के भी चित्र हैं। **सर जान मार्शल** का मत है कि यह चित्र **पशुपति शिव** का है। इस मुद्रा से यह भी पुष्टि होती है कि वह शिव की उपासना त्रिमुख, पशुपति और योगेश्वर के रूप में करते थे। शिव लिंग की आकृति के पत्थर पाये जाने से भी शैव पूजा की पुष्टि होती है। प्रसिद्ध इतिहासकार सर जॉन मार्शल का मत है, "सिंधु घाटी की सभ्यता में शिव प्रधान देवता थे।"

पौराणिक ग्रंथों में शिव को देवताओं और असुरों में सर्वाधिक शक्तिसंपन्न और तेजस्वी देवता स्वीकार किये जाने के कारण ही उन्हें '**महादेव**' के नाम से जाना जाता है। इस संप्रदाय की कुछ अन्य प्रमुख शाखाएँ **पाशुपत, कापालिक** और **कालामुख** हैं। इस संप्रदाय का प्राचीनतम स्वरूप पाशुपत के नाम से जाना जाता है। इसके अनुयायी अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने में विश्वास करते थे। शैव संप्रदाय की कापालिक शाखा के अनुयायी श्मशान स्थल पर साधना करते हैं और कहा जाता है कि वे कई अलौकिक शक्तियों के स्वामी होते हैं। वे उन सभी पदार्थों का भक्षण करते हैं जिन्हें समाज में अखाद्य माना जाता है। शिव की लिंग के रूप में पूजा के भी अनेक वर्णन मिलते हैं। दक्षिण भारत में **लिंगायत** संप्रदाय के अनेक मंदिर व मठ उपलब्ध हैं। शिव आज भी जनसामान्य के लोकप्रिय देवता के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हैं। इस धर्म के चार प्रमुख पाद (पाश) विद्या, क्रिया, योग और चर्चा हैं और इसके तीन प्रमुख पदार्थ पति (स्वामी), पशु (आत्मा) और पाश (बंधन) हैं। प्राचीन भारत से लेकर आज तक यह संप्रदाय किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है जो इसकी लोकप्रियता की पुष्टि करता है। बाद में शिव के उपासकों के कई सम्प्रदाय बन गए, जैसे पाशुपत, कापालिक, लिंगायत एवं कश्मीरी शैव सम्प्रदाय आदि।

शक्ति संप्रदाय (Shakti Sect)—इलियट ने शक्ति संप्रदाय के संदर्भ में उल्लेख किय "शक्ति उन्हें कहा जाता है जो शक्ति की उपासना इष्ट देवी के रूप में करते हैं और उपासना विधि में तंत्र का भी प्रयोग करते हैं।" यह संप्रदाय शैव धर्म के महत्वपूर्ण अंग के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि शि उमापति और पार्वती के पति के रूप में पूजा जाता है। शक्ति की देवियों के भी सौम्य और उग्र दो रूप वर्णन पौराणिक साहित्य में मिलता है। इसके सौम्य रूप उमा, गौरी, पार्वती, अन्नपूर्णा आदि हैं और उग्र दुर्गा, चामुण्डा, काली, चण्डी और भैरवी का है। शक्ति पूजा को राजस्थान के क्षेत्र में अधिक महत्व प्राप्त था, किंतु राजपूत शिव के अनन्य भक्त थे जबकि शक्ति शिव का ही एक क्रियाशील स्वरूप है।

इस संप्रदाय के अनुयायी इसमें भक्ति, कर्म और ज्ञान तीनों का समायोजन स्वीकार करते हैं। व समय में भी शक्ति पूजा करने वालों की संख्या बहुत अधिक है और वे अपनी इच्छानुसार उसके उग्र सौम्य रूप की आराधना करते हैं और अलग-अलग मंदिरों में देवी माँ के पृथक-पृथक स्वरूप स्थापित जाने का भी उल्लेख मिलता है। बंगाल तथा असम में इस मत का विशेष प्रचार है। शक्ति धर्म के ि 'त्रिपुरा रहस्य', 'मालिनी विजय' आदि ग्रंथों में मिलते हैं।

जैन धर्म (Jainism)—छठी शताब्दी ईसा पूर्व को धार्मिक क्रांति का युग स्वीकार किया जा इसके फलस्वरूप हिन्दू धर्म में दो नवीन शाखाओं का उदय हुआ जो जैन धर्म व बौद्ध धर्म के नाम से जाती हैं। महावीर स्वामी का जन्म 599 ई. में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। वे जैन धर्म प्रवर्तक नहीं थे, उन्हें हम छठी शताब्दी ई.पू. के जैन आन्दोलन का प्रवर्तक कह सकते हैं। राजसी पालन-पोषण के ब उनका झुकाव धर्म की ओर था और वे सत्य की खोज के लिए उतावले थे। घोर तप के बाद उन्हें ज्ञान की हुयी और वे वर्धमान से महावीर और 'जिन' (जितेन्द्रिय) कहलाये जाने लगे। तपस्या के दौरान उनके वस्त्र गये और वे नग्न रहने लगे।

यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म का अभ्युदय समान परिस्थितियों और समय में हुआ था परंतु जैन धर्म धर्म की भाँति विदेशों में लोकप्रिय नहीं हुआ। उसका प्रमुख क्षेत्र भारत ही रहा है। आज जबकि बौद्ध धर्म देश में लुप्त होता जा रहा है, वहीं जैन धर्म उत्तरोत्तर विकास की ओर उन्मुख है। इस धर्म में प्रवर्तक तीर्थंकर कहा जाता है, जिनकी कुल संख्या चौबीस स्वीकार की जाती है। इनमें महावीर स्वामी चौबीसवें अंतिम तीर्थंकर हैं।

उन्होंने अपने उपदेशों से दु:ख और दु;ख निरोध की समस्या व निवृत्ति मार्ग का उल्लेख किया है कि मूल तृष्णा है और उसका नाश करके ही व्यक्ति संसार के आवागमन से मुक्त हो सकता है। उनके अ मुक्ति अथवा निर्वाण का एकमात्र साधन कर्मफल से विमुक्ति है। पूर्व जन्म के बुरे कर्मों के फलों क करके और सद्कर्म करके ही व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इस मुक्ति के लिए उन्होंने त्रिरत्नों—स श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण पर बल दिया है। किंतु जैन साधुओं के लिए उन्होंने पाँच महाव्र अनुसरण अनिवार्य बताया है जो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य हैं। उन्होंने अपने प्रवच पाँच प्रकार के ज्ञानों का भी उल्लेख किया है जो (*i*) मति ज्ञान, (*ii*) श्रुति ज्ञान, (*iii*) अवधि ज्ञान मनप्रमाय ज्ञान और (*v*) कैवल्य ज्ञान के नाम से जाने जाते हैं। जैन धर्म में आत्मिक तत्व को अनन्त, असीम सर्वव्यापी माना गया है। इसके अनुसार जीव और आत्मा को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया गया और स्यादव

अनुसार सत्य के भी भिन्न-भिन्न रूप वर्णित किये गये हैं। जैन धर्म को ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं है और उसे सृष्टि का सृजनकर्ता नहीं माना गया है। जैन धर्म जाति-पाँति का विरोधी है। उसे ब्राह्मणों की सर्वोच्चता भी मान्य नहीं है। अंहिसा में जैन धर्म का अटूट विश्वास है। जैन धर्म में मन, वचन और कर्म से हिंसा न करने पर बल दिया गया है।

कालांतर में कुछ आंतारिक मतभेदों के कारण जैन धर्म दो भागों में विभाजित हो गया जो क्रमश: दिगम्बर व **श्वेताम्बर** शाखा के नाम से जाने गये। दिगम्बर साधु नंगे रहते हैं परंतु श्वेताम्बर श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वर्तमान समय में दोनों प्रकार के संतों को समाज में आदर व सम्मान प्राप्त है और जैनियों के अनेक प्रसिद्ध मंदिर और विशाल मूर्तियाँ उसकी भव्यता की परिचायक हैं। वास्तव में जैन धर्म धनिक और व्यावसायिक लोगों का धर्म भी कहा जाता है।

बौद्ध धर्म (Buddhism)—बौद्ध धर्म के प्रवर्तक सिद्धार्थ थे जो शाक्य मुनि अथवा गौतम बुद्ध के नाम से भी जाने जाते हैं। उनका जन्म 536 ई. पू. में कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी वन में हुआ था। बाल्यकाल से ही अपनी चिंतनशील प्रवृत्ति के कारण, वह सांसारिक दु:ख को देखकर अत्यंत दु:खी थे। उन्हें पारिवारिक बंधन में जकड़ने के लिए कम आयु में उनका विवाह भी एक सुंदर राजकुमारी यशोधरा से कर दिया गया और एक पुत्र राहुल का जन्म भी उन्हें बाँधे नहीं रख सका। 29 वर्ष की आयु में राजसी सुखों को त्याग कर सत्य की खोज के लिए निकल पड़े और कठोर तपस्या से अंत में उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई।

महात्मा बुद्ध ने अपने अकाट्य तर्कों के द्वारा समाज में फैले हुए आडम्बरों व अंधविश्वासों पर कुठराघात करके सभी के लिए मोक्ष का मार्ग उन्मुख किया। संक्षेप में उनकी प्रमुख शिक्षाएँ निम्नलिखित थीं—

महात्मा बुद्ध का समस्त दर्शन **चार आर्य सत्यों** पर आधारित है जो दु:ख की समस्या पर केंद्रित है। दु:ख, दु:ख समुदय और दु:ख निरोध के सिद्धांत पर उन्होंने विशेष बल दिया है और जिसके विनाश का मार्ग उन्होंने **आष्टांगिक मार्ग** का अनुसारण बताया है। महात्मा बुद्ध ने आदर्शवाद के स्थान पर व्यावहारिकता पर अधिक बल दिया है और चरित्र निर्माण के लिए उन्होंने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, बुरे विचारों के त्याग और धन-त्याग आदि को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार तृष्णा सब दु:खों का मूल है और उसका नाश ही व्यक्ति को मोक्ष की ओर अग्रसरित करता है। अष्टांगिक मार्ग के अनुसरण के द्वारा तृष्णा का नाश सम्भव है।

महात्मा बुद्ध ने जैन धर्म के समान अहिंसा पर बल दिया। ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का विरोध, बलि-प्रथा का विरोध, कर्म के सिद्धांत में विश्वास और नैतिकता के सिद्धांत पर भी महात्मा बुद्ध ने विशिष्ट ध्यान केंद्रित किया। साथ ही उन्होंने अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, कर्मकाण्ड और जाति-प्रथा पर भी कुठाराघात किया।

जैन धर्म के समान बौद्ध धर्म भी कालांतर में **हीनयान** और **महायान** नामक दो भागों में बँट गया था। हीनयान से तात्पर्य निकृष्ट और महायान से उत्कृष्ट से है। हीनयान महायान की तुलना में कट्टरपंथी है और ईश्वर की सत्ता में अविश्वास करते हैं। उनकी मान्यता है कि केवल महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों के अनुसरण के द्वारा ही निर्वाण की प्राप्ति संभव है। वे आत्मा में भी विश्वास नहीं करते हैं।

राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण बौद्ध धर्म का उत्थान तीव्र गति से हुआ और उसने जनसाधारण पर विशेष प्रभाव डाला। महायान शाखा ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को सरल बनाया क्योंकि वे विश्व-कल्याण की भावना से

प्रेरित हैं। इस शाखा के अनुयायी मूर्ति पूजक हैं। सरल व स्पष्ट महायान शाखा का देश-विदेश में पर्याप्त व प्रसार हुआ। बौद्ध धर्म की अन्य शाखा **वज्रयान** का वर्णन भी मिलता है, जिसमें तंत्र-मंत्र को महत्व गया है और तांत्रिक क्रियाओं के माध्यम से मोक्ष हेतु लोगों को प्रेरित किया गया।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि महात्मा बुद्ध के उपदेश व शिक्षाएँ अत्यंत व्यावहारिक थीं। उन और दर्शन की सूक्ष्मता और जटिलता नहीं थी। उन्होंने भारत ही नहीं अपितु विश्व के सम्मुख एक ऐस प्रस्तुत किया जो कोई नवीन धर्म नहीं था अपितु समस्त धर्मों की अच्छी बातों का मिश्रित रूप था। इस कारण ही कालांतर में हिन्दू धर्म में भी सुधार हुए। परंतु समय के साथ यह धर्म भी पतन की ओर अग्र हुआ जिसके लिए राज्याश्रय की समाप्ति, ब्राह्मण धर्म का उत्थान, राजपूतों का उदय, बौद्ध धर्म में वि विदेशी आक्रमण, तेजस्वी नेतृत्व का अभाव और अहिंसा का सिद्धांत आदि कारण उत्तरदायी कहे जा सक

● मध्यकाल में धार्मिक आंदोलन (Religious Movements in Medieval Pe

भक्ति आंदोलन और सूफीवाद के रूप में मध्यकाल में भारत में दो नवीन आंदोलनों का उदय जिनका मुख्य उद्देश्य अलग-अलग होते हुए भी एक था। वस्तुत: दोनों ही मानव को आवागमन के बं छुटकारा दिलाने, धार्मिक आडम्बरों से मुक्त कराने और हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव की स्थापना करना चाहते

भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement)—मध्यकाल में अनेक धार्मिक विचारकों सुधारकों ने भारत के समाजिक-धार्मिक जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से भक्ति को साधन बनाक आन्दोलन प्रारम्भ किया जो भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। डॉ. **आशीर्वादी लाल** श्रीवास्त भक्ति आंदोलन के उद्देश्य के संदर्भ में लिखा है—"भक्ति आंदोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे-प्रथम, हिन्दू में सुधार करना ताकि वह इस्लामी प्रचार और प्रसार के आक्रमणों को झेल सके और द्वितीय, हिन्दू इस्लाम धर्म में समन्वय स्थापित करना तथा दोनों जातियों में सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना।"

भक्ति आंदोलन के प्रवर्तकों ने भक्ति के माध्यम से जन-साधारण को मोक्ष के लिए प्रेरित किय कर्मकाण्ड का विरोध किया। इस आंदोलन के प्रथम महत्वपूर्ण संत **रामानुज** थे। तत्पश्चात् माधव बल्लभाचार्य और रामानंद ने इस आंदोलन को गति प्रदान की तथा लोगों में परस्पर प्रेम व सद्भाव क तथा **कर्मकाण्ड के विरोध** की भावना को जाग्रत करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। **कबीर और** जैसे भक्ति आंदोलन के उदारवादी संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देने के लिए दोनों धर्मों में व्य कुरीतियों का खुलकर विरोध किया तथा मूर्तिपूजा, अजान, तीर्थ, व्रत आदि की कड़ी निंदा करके वा भक्ति पर बल दिया। इन संतों के प्रभाव के कारण हिन्दू धर्म में जटिलता कम होने लगी और जाति के शिथिल हो गये।

भक्ति आंदोलन के संतों ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु समानता, भ्रातृत्व, एकेश्वरवा मूर्ति-पूजा के विरोध के सिद्धांतों का प्रचार किया। उनका एक लक्ष्य स्वस्थ व कर्मकाण्ड-रहित समा स्थापना करना तथा सभी जाति के लोगों के लिए मोक्ष का मार्ग उन्मुख करना भी था। संतों की इस भूमिका के संदर्भ में **डॉ. यूसुफ हुसैन** ने लिखा है, "उनका उद्देश्य एक सामूहिक जीवन का नये प्र निर्माण करना और एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जिसमें सबको समानता और न्याय प्राप्त ह जिसमें रहकर समस्त धर्मों के मनुष्य अपना पूर्ण नैतिक और आध्यात्मिक विकास कर सकें।"

भक्ति आंदोलन ने भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति को प्रभावित किया तथा देश में राष्ट्रीय एकता की स्थापना हुई, हिन्दू संस्कृति विकसित हुई, विरोधी संप्रदायों में सद्भाव व समन्वय उत्पन्न हुआ, सामाजिक कुरीतियों का अंत हुआ और ब्राह्मणों की प्रभुसत्ता पर भी कुठाराघात हुआ। इस आंदोलन के प्रवर्तकों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से उपदेश देकर जनभाषा साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

भारत में सूफीवाद (Sufism in India)—सूफीवाद इस्लाम के रहस्यवाद की ओर संकेत करता है। यह धार्मिक जीवन की वह अवस्था है जिसमें बाहरी गतिविधियों की अपेक्षा आंतरिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया जाता है। सूफी संतों के भी भक्ति आंदोलन के संतों के समान दो प्रमुख उद्देश्य थे- प्रथम, वे अपना आध्यात्मिक विकास करने के इच्छुक थे और द्वितीय, वे इस्लाम और मानवता की सेवा के भाव से प्रेरित थे। भारत में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने खानकाहों का निर्माण किया और हिन्दू रीति-रिवाजों को अपनाकर निम्न वर्ग के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारंभ किया। उन्होने समाज सेवा को ईश्वर की सेवा का साधन बताया तथा अपने शिष्यों को इसके लिये प्रोत्साहित किया। उनके उपदेशों के फलस्वरूप जनता के सामाजिक एवं नैतिक जीवन में परिवर्तन हुए। सूफी धर्म की भारत में चार शाखाओं में से **चिश्ती** शाखा सर्वाधिक लोकप्रिय थी। इसके संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना में प्रमुख योगदान दिया। यही कारण है कि **शेख निजामुद्दीन औलिया** और फरीदुद्दीन गंज-ए-शिकर जैसे संत हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा समान रूप से पूजे जाते हैं।

भारत में सूफी मत का विकास मध्यकाल में ही हुआ। भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना से विभिन्न सूफी संतों का यहाँ आगमन हुआ जिन्हें राज्य की ओर से सुविधाएँ और संरक्षण भी प्रदान किया गया। सूफी संतों के प्रभाव, राजनीतिक दबाव और करों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए अनेक निर्धन लोगों ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया। सूफी संतों ने हिन्दू धर्म में विद्यमान कर्मकाण्डों का विरोध किया और बिना जाति-भेद के मोक्ष के द्वार सभी के लिए खोल दिये। आज भी **शेख मुईनुद्दीन चिश्ती** और बाबा फरीद जैसे सूफी सन्त दोनों समुदायों की समान श्रद्धा के पात्र हैं। सूफी संतों के उदार धार्मिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप छुआछूत की भावना कम हो गयी और समानता के व्यवहार ने परस्पर विरोधी धर्मों, संस्कृतियों में परस्पर भाईचारा और सद्भाव में भी अभिवृद्धि में सहायता की।

अत: स्पष्ट है कि सूफी संतों ने अपनी उदारता के कारण तत्कालीन समाज पर व्यापक प्रभाव डाला और इस्लाम में विद्यमान कट्टरता को कम करने और परस्पर विरोधी धर्मों में समन्वय उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। **डॉ. यूसुफ हुसैन** ने भी इस संदर्भ में लिखा है, "मूल रूप में इन सूफियों के कारण ही दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद, मुस्लिम समाज आध्यात्मिक एवं नैतिक रूप से संगठित हो गया और देश के विभिन्न भागों में अनेक राजवंशों की आधारशिला रखी गयी। शासक और शासित वर्ग के बीच की खाई को एक तरफ तो सूफी संतों ने और दूसरी तरफ हिन्दू संतों ने किसी हद तक पाट दिया।" **सर यदुनाथ सरकार** ने इस विषय में लिखा है, "भक्ति आंदोलन और सूफी संतों ने विजेता और विजित दोनों को समीप ला दिया था।"

आधुनिक सुधार आंदोलन (Modern Reform Movements)—निस्संदेह भारत सामाजिक व धर्म सुधार आंदोलनों का प्रारंभ चौदहवीं शताब्दी में ही प्रारंभ हो चुका था किंतु 18वीं शताब्द तक की राजनीतिक स्थिति के कारण ये आंदोलन विकसित नहीं हो सके। फलत: भारत में अनेक कुप्रथा आडम्बर, कर्मकाण्ड और अंधविश्वास अपना आधिपत्य बनाये रहे। 19वीं शताब्दी में **पुनर्जागरण** के कार भारतीय धार्मिक व सामाजिक आंदोलनों के फलस्वरूप जनता में नवचेतना का संचार हुआ और सुप्त समाज जागृति उत्पन्न करने में विभिन्न विभूतियों ने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने भारत में सुधारवादी आंदोलन का सूत्रपात किया। चूँकि भारत का आधुनिकीकरण करने की भावना से प्रेरित थे इसलिए उन्हें **नवयुग का दूत** भी कहा जाता है। उन्हे सरकारी सेवा को त्याग कर देश-सेवा को अपनाया और अपने विचारों के प्रचार हेतु 20 अगस्त, 1828 ई. व **ब्रह्म समाज** की स्थापना की। उन्होंने समाज, धर्म, राष्ट्र और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। वह **सती प्रथा** के प्रबल विरोधी थे और बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, जाति-पाँति का भी उन्हे विरोध किया। सती प्रथा के विरूद्ध कानून पारित कराने में उनके प्रयासों की भूमिका ही निर्णायक रही। धार्मि क्षेत्र में मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। धार्मिक सर्वोच्चता उन्हें स्वीकार नहीं थी। वह भारत के लोगों को एक सरल स्पष्ट व आडम्बरहीन धर्म देने के इच्छुक थे। वास्तव में उन्होंने अपने प्रयासों और ब्रह्म समाज के माध्यम आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

निस्संदेह ब्रह्म समाज ने सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा क परंतु यह एक रक्षात्मक आंदोलन था। वह ईसाई व अन्य धर्मों पर प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं कर सका। इसक प्रमुख कारण स्वयं राजा राममोहन राय का अंग्रेजी शिक्षा और शासन पद्धति में विश्वास कहा जा सकता है। इ अभाव की पूर्ति स्वामी दयानंद सरस्वती और उनके आर्य समाज ने की। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा व संस्कृति प खुलकर प्रहार किया और हिन्दुत्व के वृक्ष को फलने-फूलने के महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किये।

स्वामी दयानंद वेदों में अत्यधिक विश्वास करते थे। उन्होंने मूर्ति-पूजा और कर्मकाण्डों का प्रब विरोध किया। उनका '**शुद्धिकरण**' आंदोलन इस्लाम के अनुयायियों को पूर्ण रूप से झकझोरने में सफल रह- समाज, धर्म व शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने के साथ उन्होंने राष्ट्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा क- वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने **स्वराज** शब्द का प्रयोग किया। नवयुवक आर्य समाजी लोगों ने खुलकर य घोषणा की कि 'वे उस दिन की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे हैं जब वे मुसलमानों और अंग्रेजों से अपना हिसा बराबर करेंगे।'

वास्तव में स्वामी दयानंद सरस्वती धर्म और राष्ट्र के निर्माता थे। उन्होंने अपनी शिक्षाओं से पतनोन्मु- हिंदू धर्म मे नवजीवन फूँक दिय। उनके संदर्भ में **अरविन्द घोष** ने लिखा है, "दयानंद सरस्वती परमात्मा द इस विचित्र सृष्टि में अद्वितीय योद्धा तथा मानव एवं मानवीय संस्थाओं को साकार करने वाले एक अदभु शिल्पी थे।"

रामकृष्ण परमहंस भी प्राचीन हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करने में संलग्न रहे। उनके देहांत के पश्चात इस कार्य को उनके शिष्य **स्वामी विवेकानंद** ने पूर्ण करने का दायित्व सँभाला। उन्होंने भारती धार्मिक भावनाओं को विदेशों में भी फैलाया और '**सर्व धर्म सम्मेलन**' में भाग लेने के लिए अमरीका द

पहुँचे। शिकागो में होने वाले धर्म सम्मेलन को सुनने के बाद '**न्यूयार्क हेराल्ड**' नामक पत्र ने लिखा, "उनको सुनने के बाद हमें ऐसा लगा कि भारत जैसे विद्वान देश में अपने धर्म प्रचारक भेजना मूर्खता है।" स्वामी विवेकानंद ने धर्म के साथ भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। उनके प्रयासों से दुर्बल एवं मृतप्राय: हिन्दू धर्म में नवजीवन और शक्ति का संचार हुआ। साथ ही भारतीय धर्म ने विदेशों में अपने खोये हुए गौरव को पुन: अर्जित करके अपनी जड़ों को इतना मजबूत कर लिया कि अब वह सरलता से बाह्य आक्रमणों का सामना करने में सक्षम हो गया। निश्चय ही स्वामी विवेकानंद हमारे देश और समाज की अमूल्य निधि हैं जिन्होंने धर्म में आध्यात्मवाद को पुन: सजीव किया।

भारत में धर्म सुधार की दिशा में **थियोसोफिकल सोसायटी** ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत में इस समाज का नेतृत्व प्रमुख विदुषी महिला **एनी बेसेंट** ने किया। वह निरंतर विदेशों में भारतीय धर्म के प्रचार में संलग्न रहीं। उन्होंने गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया और रामायण व महाभारत पर संक्षिप्त भाष्य लिखे। उन्होंने विदेशों में गीता और उपनिषदों का प्रचार किया और भारतीय धर्म और संस्कृति के महत्व को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने एक समय यह भी कहा था, "विश्व के अनेक धर्मों के 40 वर्षों के अध्ययन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि मुझे हिन्दुत्व के समान कोई अन्य धर्म इतना पूर्ण, वैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतीत नहीं हुआ। जितना अधिक तुमको इसका ज्ञान होगा, उतना ही अधिक तुम इससे प्रेम करोगे।" वास्तव में इस धर्म सुधार आंदोलन के परिणामस्वरूप धर्म में विद्यमान बुराइयों का काफी हद तक अंत हो गया और देश में नवजागरण और आधुनिकीकरण का सूत्रपात हुआ।

इस्लाम में धर्म सुधार के प्रयास देर से प्रारंभ हुए। मध्यकाल में सूफी संतों ने इस्लाम की कट्टरता को समाप्त करने में सराहनीय योगदान प्रदान किया और आधुनिक भारत में **सर सैय्यद अहमद खाँ** ने मुस्लिम धर्म का परिष्कृत रूप प्रदान किया। उन्होंने मुसलमानों में व्याप्त अशिक्षा और पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए **अलीगढ़ आंदोलन** का सूत्रपात किया और उनकी स्थिति को सुधारने के लिए अंग्रेजों के साथ उनके मधुर संबंधों की वकालत की। बाद में इस दिशा में प्रसिद्ध कवि मुहम्मद इकबाल ने भी प्रशंसनीय भूमिका अदा की। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवयुवक मुसलमानों और हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया।

धर्म सुधार आंदोलन के इस युग में सिख एवं पारसी धर्म भी अछूते नहीं रहे। सब धर्म प्रवर्तकों ने धर्म की व्याख्या अपने-अपने ढंग से और तर्कसंगत रूप में करके इस आंदोलन को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया। विभिन्न धर्मों में सुधारों के फलस्वरूप धार्मिक कट्टरता और सामाजिक जटिलताओं का अंत हो गया और धर्म का एक स्पष्ट व सरल चित्र जन-साधारण के सम्मुख उपस्थित हो गया।

● वर्ण (Varna)

विद्वानों ने 'वर्ण' शब्द का प्रयोग रंग व जाति-विशेष दोनों के संदर्भ में किया है, किंतु साहित्यिक दृष्टिकोण से वर्ण का तात्पर्य "उस समूह से है जोकि एक विशेष प्रकार के व्यवसाय को करता है अथवा समाज द्वारा निश्चित कार्यों को संपादित करता है।" भारतीय हिन्दू दर्शन और धर्मशास्त्रों में हिन्दू समाज में चार वर्णों के होने की पुष्टि होती है जिसे वर्ण व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था का आधार वैज्ञानिक, सैद्धांतिक और दार्शनिक था। प्रत्येक वर्ण का कर्तव्य एवं कर्म निर्धारित कर दिये जाने के

8. आधुनिक धर्म सुधार आंदोलन की विवेचना करें।
9. भारत में प्रचलित जैन एवं बौद्ध धर्म का वर्णन करें।
10. वर्ण व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सिद्धांत एवं गुण-दोषों का वर्णन करें।

● संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. इतिहास लेखन-एन. जयपालन, एटलांटिक पब्लिशर्स।
2. इतिहास लेखन : इतिहास लेखन का इतिहास-ताजराम शर्मा।
3. इतिहास लेखन-एन. सुब्रमण्यम।
4. इतिहास लेखन : भूत एवं वर्तमान-कीरित के. शाह।
5. मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन: डॉ. हरिशंकर श्रीवास्तव, वेणी प्रकाशन।

MA-HIS-101(H)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणिः पष्यन्तु माकष्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

Swami Vivekanand
SUBHARTI UNIVERSITY
Subhartipuram, NH-58, Delhi-Haridwar Bypass Road,
Meerut, Uttar Pradesh 250005
Phone : 0121-243 9043
Website : www.subhartidde.com, E-mail : ddesvsu@gmail.com